❑ विशेष लेख

छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

देखो ! जहाँ पर वेदपाठ होता है, ब्राह्मण लोग वेदपाठ करते हैं, वहाँ वेदध्वनि से वह कक्ष बिल्कुल पवित्र हो जाता है। वैसे यह धाम स्वतः पूर्ण पवित्र है। तुम्हें इस बात की समझ होनी चाहिए कि यहाँ पर आनन्दकन्द श्रीप्रभुजी का तेज हर समय व्यापक रहता है। कोई कहीं तीर्थों में जाये या न जाये, प्रभुजी के इस धाम में आने से वह तेज तुम्हारे सिरों को अवश्य स्पर्श करता है। और यहाँ से तुम उन पवित्र कणों को लेकर जाते हो जो तुम्हें बाहर जाकर उपलब्ध नहीं हो सकते। तीर्थाटन का भी माहात्म्य है, तीर्थों में भी प्रभाव होता है। किन्तु आजकल तीर्थों में भी जनसमुदाय बहुत अधिक मात्रा में आया करता है। जो मनुष्य राग-द्वेष में पड़ा रहकर आगे बढ़ने की चेष्टा करता है वह उसकी भूल है। इस प्रकार से मनुष्य आगे नहीं बढ़ा करता। आगे बढ़ाने वाला काम केवल मात्र एक होता है वह उनके (गुरुदेव) हृदय का आल्हाद, उनकी प्रसन्नता उनके मन में यह आ जाये कि इसके लिये यह करना है—और यह भी उस समये आ जाये जबकि मनुष्य दूसरों का निन्दक न होकर के दूसरों के कड़वे वचन बर्दाश्त करके बिच्छू के डंक जैसे कड़वे वचन बर्दाश्त करके जो विनीत रहता है, झुका रहता है, समझ लेना चाहिए कि उसने पा लिया, वह मनुष्य बनने वाला हुआ करता है। उसके अन्दर ताकतों का उत्थान हुआ करता है और वह कल्याण मार्ग में आगे बढ़ जाया करता है।

हमने आश्रम में एकान्तवास का कार्यक्रम शुरू किया। भगवान शंकर की महिमा का पाठ कराना शुरू किया। विद्वान ब्राह्मणों को बुलाना शुरू किया, कथायें करानी आरम्भ की। किन्तु जिस ढंग से हम इसे चलाना चाहते थे वैसे चला नहीं पाये। उसमें बहुत से अन्तराय आते रहे, क्षोभ होता रहा, इधर पंडितों में भी परस्पर क्षोभ होता रहा जिसके कारण ठीक से चला नहीं सके। किन्तु फिर भी हमने विधि की पूर्ति की। मैं इस कार्यक्रम के अन्दर हर साल यह चाहता हूँ कि मेरा एकान्तवास निर्विघ्न पूरा हो जाये। मेरे रास्ते में कोई अन्तराय पैदा न हो। इसलिये मैंने ऊपर के कमरे बना लिये। और चाहा करता हूँ कि मुझसे कोई मिले नहीं, मैं वहाँ शान्तिपूर्वक बैठा रहूँ। अथवा वे कार्य करता रहूँ जो मुझे करने चाहिये। जो नियम मैं बना कर चलता हूँ उन नियमों का पालन मैं करता रहूँ। किन्तु नहीं हो पाता। इसमें कुछ कारण हैं। कारण यह है कि हमारे बाहर के बच्चे यहाँ आकर रहते हैं। किसी को बुखार चढ़ जाता है। किसी को कोई बीमारी हो जाती है। तो किसी को कोई। किसी को दौरा पड़ जाता है। हमारे पास खबर पहुँचती है, हमें आना ही पड़ता है, चाहे हम किसी भी स्थिति के अन्दर हों किन्तु अपने नियम को परिवर्तित करके हमें आना पड़ता है। विशेष बात हमने यह देखी है पिछले साल

हमारी गुरु बहिन द्रोपदी देवी यहीं रहती थीं, उनके शरीर में कुछ व्याधियाँ आई। उनको भी मुझे देखना पड़ता था। मेरे कहने का तात्पर्य है, आश्रम में किसी भी प्रकार की अव्यवस्था बनती है, आश्रम वासी लड़ते-झगड़ते हैं या और किसी किस्म की बात होती है। तो ये सब मेरे कार्यक्रम में भंग डालने वाला होता है। मैं अपने कार्यक्रम को बकायदा निभा नहीं पाता। इस प्रकार के वातावरण को देखकर के तो हमारे मन में यही भावनायें उठती रही कि पहले की तरह से किसी एकान्त स्थान में जाकर अकेला एकान्तवास करूँ ताकि मेरे अनुष्ठान व एकान्तवास में कोई अन्तराय न आये। एकान्तवास वाली जो बात है वह तो मेरे लिये भी उत्कृष्ट है और तुम सबके लिये भी उत्कृष्ट है इसमें कोई संशय की बात नहीं है। मेरे मन में इस प्रकार की भावना थी कि हम इस प्रकार की नियमावली चला देंगे जिसके अन्दर मेरा भी कार्यक्रम ठीक चल जावेगा और तुम्हारा भी। प्रातःकाल चार बजे उठना उसके बाद शौच स्नानादि से निवृत्त होकर यज्ञशाला में बैठ जाना और अपने गुरुमन्त्रों का जाप करना तथा वेदपाठ होने पर वेदपाठ सुनना और दोपहर में सूक्ष्म फलाहार करना तथा फिर यज्ञशाला में बैठ जाना अथवा जो अच्छे ध्यानी हैं उनको अपने कमरे में ही ध्यान करना, ये सब अनुष्ठान के दिनों के नियम हैं। एकान्त कुटिया में रहने के विषय में एक बात और कह देना चाहता हूँ। एक व्यक्ति जो ज्यादा अभ्यासी नहीं है, अपने कमरे में बैठकर साधना करना चाहता है वह ज्यादा उत्कृष्ट नहीं रहेगा। क्यों नहीं रहेगा? उसका मन इतनी पहुँच वाला नहीं है कि एकान्त में बैठने पर उसका मन चिन्तन में लगा रहे। एकान्त में एक बात और रहती है—**'खाली मन शैतान का वास'**। इसलिये अकेले में उसको रहना चाहिये जिसका मन धारा प्रवाह ध्यान में चला हुआ है। जिसका मन बिल्कुल समाविस्थ है—बिल्कुल एकाग्र है। ऐसे व्यक्ति को एकान्त में रहकर साधना करनी चाहिये। किन्तु जिसका मन सांसारिक भावनाओं या दुर्व्यसनों का एकान्त में चिन्तन करता है उसे एकान्त में बिल्कुल नहीं बैठना चाहिए।

इसलिये हमने अपने मन में सोचा कि हमारे सत्संगी प्रायः गृहस्थी हैं। वे इस प्रकार सामूहिक अनुष्ठानों में शामिल हों। ब्रह्मचारी लोग तो इन दिनों काम में ही लगे रहते हैं। मैं यह देखता हूँ कि इतना बड़ा कार्य चलता है आश्रम में, इतनी सेवाओं का कार्य चलता है, तुम्हें इस बात की बड़ी खुशी होगी कि जो लोग इन सेवाओं को करते हैं सब तुम्हारे गुरु भाई हैं। इन कामों के लिये विशेष नौकर नहीं रखे जाते। यह बात अलग है कि बहुत बड़ी भीड़ हो जाने पर समय-समय पर हम बाहर से भी वेतन भोगी व्यक्ति बुला लेते हैं। यदि सारा काम नौकरों से करायें तो बहुत बड़े खर्चे का भार आश्रम पर पड़ेगा और फिर भी वह काम ठीक से नहीं बन पायेगा। सेवा भी तो श्रद्धालु ही कर सकता है, नौकर सेवा नहीं कर सकता। नौकर तो केवल मात्र अपनी ड्यूटी पूर्ति वाला काम करेगा, दूसरा काम नौकर से नहीं हुआ करता। खैर! इस कार्यक्रम को हमने चलाया। हमने अपने मन में सोचा कि आश्रम में सब लोग अपने-अपने गुरुमन्त्रों का जाप करें, आश्रम का वातावरण शान्त और शुद्ध रहे, कोई आपस में राग-द्वेष का वातावरण पैदा किया इससे वे लोग स्वयं भी क्षुब्ध हुये और औरों को भी क्षुब्ध किया। इस प्रकार

के लोग दूसरों के भी भजन में बाधक बन जाया करते हैं। निन्दा–चुगली और काना–फूंसी करने वाले लोग इस शान्त और शुद्ध वातावरण को भी अशान्त कर देते हैं। मैं समझता हूँ–**'छिद्रेषु अनर्था बहुली भवन्ति'** पवित्र कार्यों में अन्तराय आया करते हैं। किन्तु फिर भी श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के अखण्ड तेज को देख करके इस तरह के अन्तराय स्वतः तिरोहित हो जाते हैं। यह देखो यह नीम का पेड़ है जिस समय ज्यादा भीड़ नहीं रहती थी, शक्तिपात बड़े तीव्र होते थे। यहाँ ध्यान स्थितियाँ बड़ी ऊंची–ऊँची चलती थीं। हमारे एक बच्चे काशीराम पुजारी इस पेड़ के नीचे ध्यान में बैठा करते थे। उसके मन में एक शंका थी कि यहाँ लोग साधना करने आते हैं। उनमें चाहे कैसे रोगी हों यहाँ साधन करने से सबको पूर्ण लाभ हो जाता है। यह क्या मामला है ? ध्यान में वह बैठा और देखा कि यहाँ गुफा के सामने हजारों मरीज बैठे हुये रो रहे हैं, चिल्ला रहे हैं। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के हाथ से दिव्य तेज की धारायें निकल रही हैं और उनके सिरों को छू रही हैं और उसके प्रभाव से सब रोगी ठीक हो रहे हैं। उस समय हम जिन–जिन साधकों को साधन कराया करते थे। सबको पूर्ण लाभ होता था। सब निरोग होते चले गये। साधारण–साधारण क्रियाओं से लोगों को लाभ होता था। मुझे याद है यहाँ एक श्यामलाल कढ़ेरा रहता था वह मेरे साथ नेतियाँ बनाया करता था, हम लोग शाम चार बजे से रात के आठ नौ बजे तक डेढ़–दो सौ नेतियाँ बना लिया करते थे। और दूसरे दिन प्रातः लोगों को नेतियाँ कराया करते थे। हमने एक दिन में डेढ़ सौ, दो सौ लोगों को नेतियाँ कराई। आश्रम साधन करने वालों से भरा रहता था। यहाँ पर पास में महादेव गाँव है वहाँ से तीस–चालीस व्यक्ति आते थे–एतादपुर से आते थे, कुबेरपुर से आते थे, चारों तरफ से लोग आते थे। सलमपुर की एक बुढ़िया को उसके घर वाले घोड़े पर लाया करते थे उसको पूर्णलाभ हुआ। इस प्रकार से सभी को आनन्दकन्द श्रीप्रभुजी की कृपा से पूर्णलाभ हो जाता था। मेरा बहुत ही व्यस्त कार्यक्रम रहा करता था। नेतियाँ आदि करा करके मैं लोगों को जीवन तत्व साधन कराया करता था। फिर स्नानादि करके मैं स्वयं ही भोजन बनाया करता था और एक ही बार भोजन किया करता था। ऐसी नियमावली हमारी चलती थी। उस समय के हमारे सत्संगी जानते हैं कि उस समय लोगों का ध्यान प्रवाह कैसा चलता था ? मेरे ख्याल में ऐसा कोई साधक नहीं था जिसका ध्यान न लगता हो, अनुभूतियाँ न होती हों। कोई ध्यान में प्रवेश न कर सका हो, ऐसा तो कोई था ही नहीं। यह बात अलग है सभी उत्कृष्ट नहीं बन सके हैं। मुझे पूरा स्मरण है एक दिन चालीस व्यक्ति ध्यान में बैठे।

चालीस के चालीस ध्यानस्थ थे

यह बात सन् १९५० के दशक की है। मुझे वे नजारे याद हैं जिस समय हमने शिकोहाबाद में योग प्रचार आरम्भ किया था। जो लाला लक्ष्मीनारायण के घर में ही होता था। एक दिन शहर में कार्यक्रम कराया गया। वहाँ पर बत्तीस आदमी ध्यान में बेहोश थे उन्हें जबरदस्ती उठा–उठाकर अपने घरों को ले जाया गया। लक्ष्मीनारायण कहने लगे– 'महाराज जी ! इनका

ध्यान खुलेगा भी कि नहीं ! हमने कहा– नहीं, खुलेगा। अन्त में हमने उन लोगों को उठा–उठाकर घर भेजा। एक दिन सत्संग में एक देवी को कालिका का आवेश हो गया। उसकी जीभ सारी बाहर निकल आई बहुत देर तक लोग सोचने लगे कि अब इसके प्राण निकलने वाले हैं। वे कहते थे–गई–गई, अब तो यह गई। किन्तु थोड़ी देर के बाद उसका ध्यान खुला और बड़े–बड़े अनुभव की बातें उसने बतलाई। ऐसे ही बड़ी–बड़ी अनुभूतियाँ शिकोहाबाद के कार्यक्रम के दौरान लोगों को हुई। फिरोजाबाद में भी ऐसे ही होता रहा। यहाँ टूण्डला के अन्दर मित्रसेन का लड़का दस–दस घण्टे ध्यान में बैठा रहता था। बड़ी मुश्किल से हम उन्हें उठाकर घर भेजा करते थे। मित्रसेन की भी ध्यानस्थिति ऊँची चलती थी। इन लोगों को बड़े–बड़े अनुभव होते थे। केवल मात्र एक बात अवश्य थी मेरा मन बिल्कुल शान्त था किसी प्रकार की चिन्ता या द्वेष मेरे मन के अन्दर नहीं था। कृपायें श्रीप्रभुजी की अच्छी चलती थी। किन्तु अब समुदाय ज्यादा बढ़ जाने के कारण मैं उतना गौर नहीं कर पाता, सारा दिन व्यस्त रहता हूँ, मुझे समय नहीं मिल पाता। फिर भी अपने मन के अन्दर मैंने विचार किया कि सावन के महीने में एक या डेढ़ महीना एकान्तवास किया करेंगे। अबकी बार तो केवल २३ दिन का ही रखा जा सका है। पिछले वर्ष हमने डेढ़ महीना लगातार रखा था। हम चाहते थे कि कम से कम साधक लोग इन दिनों आश्रम में रहकर ध्यानाभ्यास कर लें। गृहस्थी लोग जो यहाँ आये हुये हैं, वे भी उस रंग में रंगे हुये घरों को जाये। उनका मन शान्त रहे, वे अपने मन्त्रों का जाप करते रहें, ध्यानाभ्यास करते रहें। यहाँ से अभ्यास पक्का कर घरों में जायें और वहाँ भी अभ्यास बैठाते रहे। ऐसी मेरे मन के अन्दर भावनायें बनी रहती हैं। किन्तु बात वही है। **'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति'** बहुत सी विघ्न बाधायें साधना के मार्ग में आया करती हैं। नीचे यज्ञशाला में पाठ होता रहता था हम ऊपर बैठे रहते थे वेदपाठ के बाद बड़ा जोर–शोर का वातावरण रहता था इधर महिला–निवास था। कई प्रकार की ऐसी बातें होती रहीं जिसके कारण वह कार्यक्रम ठीक ढंग से नहीं चल सका। मैं अपने मन में समझता रहूँ कि वैशाख के महीने में ऋषिकेश जाने से पहले का जो कार्यक्रम हमने यहाँ चलाया था। प्रातःकाल चार बजे उठते थे, मैं आरती–गीता पाठ के बाद स्वयं जीवन तत्व साधन करता था, सबको जीवन तत्व और योगासन कराया जाता था और सबको एक मील की दौड़ लगवाया करता था–इसके बाद सबको ध्यान में बिठाते थे। योगदर्शन का पाठ व व्याख्यान चलाते थे। वह जो हमारी नियमावली थी इस सावन के महीने की नियमावली से कहीं ज्यादा उत्कृष्ट थी। क्योंकि हम सबकी देख–रेख रखते थे हमारी निगरानी में सब काम होता था। इस महीने में मेरे ऊपर एकान्तवास में बैठ जाने पर तो एक बात हो जाती थी, कई एक तो यूँ समझते थे कि जायें, जल्दी ऊपर के कमरे में चले जायें ताकि हमें मनमानी करने का खुला रास्त मिल जाये। फिर हमारा शासन अपने ढंग का चले। अपना हुकुम नामा चलायें इसलिये वे लोग हमारे ऊपर जाने के इन्तजार में रहते हैं। फिर नीचे आने पर शाम को कई तरह की बातें सुनने के मिलती हैं इससे हमारा मन क्षुब्ध हो जाता है– दूसरों का

अनिष्ट होता है भला नहीं होता। जिस बात के लिये ये सत्संगी लोग बाहर से आते हैं वे उत्कृष्ट नहीं बन पाते। वातावरण बहुत अनुकूल न होने से साधकों को भी जो लाभ मिलना चाहिये वह पूरा का पूरा मिल नहीं पाता। वैशाख के महीने में इस प्रकार की कोई बात नहीं होती है– सबकी नियमावली ठीक चलती है।

मैं इस समय योग सिद्धान्तों की बातें नहीं करना चाहता। भाषण तो तुम रोज–रोज सुनते ही हो। अब अनुष्ठान के बाद बाहर के कार्यक्रमों में भाषणों का ही कार्यक्रम रहेगा। सारे देश में मैं भ्रमण करता हूँ। मेरा लक्ष्य रहता है कि सत्संगियों को उत्कर्ष मिलता रहे, वे साधना करते रहें, उनके मन में जागृति पैदा होती रहे। बस ! इस लक्ष्य को लेकर मैं बाहर घूमता हूँ। आश्रम की जो सेवायें होती हैं वह तो होती ही हैं। वह तो तुम करते ही हो। यहाँ जो भण्डारे आदि चलते हैं, तुम्हारे ही पुरुषार्थ का फल है। मैं कोई किसी प्रकार का बिजनेस–व्यापार नहीं करता। दुकानें मैंने नहीं चला रखी। किन्तु मैं समझता हूँ तुम सब मेरे हो। तुम लोगों ने दुकानें चला रखी हैं, उन दुकानों से ही सब आश्रम की सेवायें होती हैं और वे सेवायें ठीक होती हैं। मुझे हर्ष है इस बात की–हमने अन्य साधुओं की तरह हथकण्डे नहीं अपनाये। घरों में घुल्लक नहीं बनवा रखी कि तुम लोग महीने में दो–दो रुपये चार–चार रुपये डाल दिया करना और वह वर्ष में पचास सौ रुपये हो जाया करते हैं। हमने इस प्रकार के नियम को अपने किसी भी बच्चे से नहीं कहा– न ही हमने किसी से यह कहा– इतना काम तुम करो–यह कमरा तुम बना लो। बल्कि लोग कह जाते हैं– गुरुजी ! हमारी ओर से एक कमरा बनवा दो। लेकिन हमारे पास समय नहीं होता, हम वह भी नहीं बनवा पाते। खैर ! आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की कृपा से हमें अन्य कई महात्माओं की तरह किसी से चन्दा करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। हमने किसी बच्चे से आज तक माँग नहीं की, बल्कि जहाँ तक मेरा ख्याल है इन लोगों ने इस प्रकार के चन्दे यदि किये तो वह हमने वापिस करा दिये। मुझे याद है एक बार हमारे हिमाचल के बच्चे मेरे लिये गाड़ी खरीदने के लिये कुछ रुपया लेकर आये थे। कुछ रसीदें भी छपवा कर लाये थे। हमने कहा नहीं, हमको यह सब नहीं करना है प्रो० ऋषिराम दिल्ली वालों ने भी भवन निर्माण के लिये रसीद आदि छपवा कर पैसे एकत्रित करने की योजना बनाई थी। किन्तु हमने कहा–नहीं भई ! हम इस प्रकार से माँग–माँगकर इक्टठा नहीं करना चाहते। कुदरती ईश्वरीय इच्छा से जो होगा, वो जायेगा। हमारी भावना में रहा कि आश्रम में बहुत अच्छा विद्यालय कायम करें। जिस ढंग का मैं चाहता हूँ उस ढंग का हम कायम नहीं कर पाये। साधारण विद्यालय तो हम कब का कायम कर लेते। मुझे हर्ष इस बात का है कि अनायास मिला हुआ पैसा भी हमने नहीं लिया। मुझे याद है आज से आठ–दस वर्ष पूर्व बम्बई वाले ब्र० योगानन्द ने मुझ से कहा था– आप का आश्रम भारतवर्ष में उत्कृष्ट कोटि का है। आप अपने सवाँई आश्रम के लिये कम से कम आठ–दस लाख रु. सालाना ले लें। वह पैसा आश्रम को आगे भी मिलता रहेगा किन्तु हमने वह पैसा भी नहीं लिया। दिल्ली में केन्द्र सरकार द्वारा चलाये जा रहे योग और प्राकृतिक चिकित्सा विभाग का अध्यक्ष हमें बनाया गया आज भी हम उसके प्रधान हैं। इसके डायरेक्टर

अहमदाबाद के मुनिवर्य थे। अब धीरेन्द्र ब्रह्मचारी हो गये हैं। इसके डिप्टी डायरेक्टर हमारे बच्चे डा० नरेश हैं इन सब ने हमसे कई बार कहा—महाराज जी ! आप अध्यक्ष हैं और आप दूसरे आश्रमों के लिये पैसा मंजूर करवाते हैं— किसी को दो लाख, किसी को चार लाख आप दिलवाते हो किन्तु आप अपने सवाँई आश्रम के लिये आठ—दस लाख क्यों नहीं ले लेते ? नरेश ब्रह्मचारी ने तो हमारे ऊपर बहुत दबाव डाला कि आप अपने आश्रम के लिये क्यों नहीं मंजूर करते ? मैंने कहा— मैं अपने आश्रम के लिये सरकार से एक पाई नहीं चाहता। हम दूसरे आश्रमों के लिये मंजूर करेंगे किन्तु अपने आश्रमों के लिये एक पाई भी नहीं लेंगे, हमने नहीं लिया। खैर ! कहने का अभिप्राय यह है कि आनन्दकन्द प्रभुजी की करुणाकृपा से हमारे सब काम हो रहे हैं। हमने कभी भी सरकारी पैसा लेने का मन नहीं बनाया। प्रभुजी के बच्चों का चारों तरफ विस्तार है, स्वाभाविक ही आश्रम की सेवायें हो रही है। अपने आश्रम के प्रति बच्चों का बहुत ख्याल रहता है। आश्रम के सब काम ठीक चल रहे हैं। भविष्य में विद्यालय वगैरह के भी जो हमारे विचार हैं कालान्तर में यह रूपक ठीक हुआ तो हम उसको भी करेंगे। नहीं ठीक हुआ तो नहीं करेंगे। खैर ! मेरे कहने का अभिप्राय केवल मात्र एक है कि वर्ष भर में हमें एक मौका इस प्रकार मिलता है यद्यपि यह मेरे लिये तो व्यवधान सा है। अब की बार मैं यह महसूस करता रहा कि यह रुद्रमहायज्ञ का कार्यक्रम यहाँ शुरू करा करके हम गंगोत्री—यमनोत्री की तरफ जाकर अपना कार्यक्रम किया करेंगे। यहाँ लोग चलाते रहा करेंगे। ऐसी भावनायें मेरे मन में बार—बार आईं।

यह कार्यक्रम मैं अपनी उपस्थिति में करा रहा हूँ तुम्हें इसका बहुत अधिक लाभ उठाना चाहिये। तुम्हें यह नहीं सोचना चाहिये कि सुबह की आरती हो और गुरुजी ऊपर चले जायें तो हम जरा मन—माना व्यवहार करें, राग—द्वेष की बातें करें। यह तो एक प्रकार से मेरा अनादर सा है, मेरे को न समझना सा है। यदि कोई यह समझता है कि ये मेरे गुरुदेव हैं तो उसको यह समझना चाहिये कि वे ऊपर बैठे हुए भी मेरे हैं। मैंने उनके आज्ञाओं का पालन करना है। उनके मन को किसी भी प्रकार से कष्ट नहीं पहुँचाना है। यहाँ विवाद का कोई काम नहीं होना चाहिये, यहाँ तो आज्ञा ही प्रधान रहनी चाहिये। यद्यपि यज्ञ अनुष्ठान में काफी खर्च आश्रम का बढ़ जाता है किन्तु इसकी कोई बात नहीं हम सब बर्दाश्त कर लेंगे। यदि इस अमृत को पीने वाले—श्रीप्रभुजी के तेज को अपने अन्दर धारण करने वाले बन जायें तो हमें खर्च की कोई परवाह नहीं। तुम्हीं लोग देते हो, तुम्हारे लिये ही है। किन्तु तुम्हारे अन्दर उत्कर्ष होना चाहिये। तुम्हारा भीतरी विकास होना चाहिये। ईर्ष्या—द्वेष की धधकती आग को हटा लेना चाहिये, दबा लेना चाहिये। अपने आप को ध्यान व चिन्तन में लगाना चाहिए। किसी प्रकार की व्यर्थ बातें, विवादादि नहीं करना चाहिये। खैर ! जो बातें मेरे मन में थीं मैंने कह दीं। अपने को उत्कर्ष की ओर ले जाओ। यह एक माह का समय इसलिये रखा जाता है ताकि तुम अपनी साधना को बढ़ा सको। भविष्य में हमारी बातों को ख्याल में रखना और अपनी साधना को बढ़ाओ। बस ! बार—बार आशीर्वाद !

* * *

योगश्चित्त वृत्ति निरोधः

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

भारतीय दर्शनों में योग दर्शन सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक दोनों होने के कारण सर्वाङ्गिक मान्य है। **"न सांख्य समम् ज्ञानम् न योगात्परम् बलम्"** अर्थात् सांख्य के समान न कोई ज्ञान है और न योगबल के समान कोई बल है। योग विद्या का अवलम्ब लेकर ही ऋषियों ने बन्धन को तोड़कर आत्मसाक्षात्कार किया है। योग दर्शन के प्रणेता भगवान् पतञ्जलि देव हैं। प्रश्न उठता है कि क्या इससे पहले योग परम्परा नहीं थी ? इसका उत्तर है योग विद्या पहले भी विद्यमान थी। उपनिषदों में योग के आदि वक्ता 'हिरण्यगर्भ' माने गये हैं। आनन्दकन्द भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने गीता में अपने मुखारविन्द से बताया है कि योग को मैंने सर्वप्रथम विवस्वान के प्रति कहा था। भगवान् ने योग के साथ 'अव्यय' इस विशेषण का प्रयोग किया है। अर्थात् यह सनातन दिव्य अविनाशी विद्या है। इस प्रकार से ज्ञान होता है कि योग विद्या उतनी ही पुरातन है जितनी सृष्टि। जब हम उपनिषदों पर दृष्टि डालते हैं तो ज्ञान होता है कि सृष्टि के आदि गुरु भगवान् शिव ने ब्रह्मा आदि देवताओं को इस दिव्य ज्ञान का उपदेश किया है और इसे एकमात्र मुक्ति के साधन के रूप में प्रतिपादित किया है। इस प्रकार से उपनिषदों में योग के सिद्धान्त यत्र तत्र बिखरे हुये हैं। इस ईश्वरीय ज्ञान के प्राचीन काल से ही विद्यमान होने पर भी क्रमबद्ध तरीके से इसका निबन्धन करके योगदर्शन के रूप में परिचय कराने वाले महर्षि पतञ्जलि देव ही हैं।

योगदर्शन के बिना 'दर्शन' उसी प्रकार से है जिस प्रकार से आत्मा के बिना देह। उपनिषदों का सार होने के कारण श्री मद्भगवद्गीता को योग शास्त्र कहा जाता है। मनुष्य मात्र के आत्मोद्धार के लिये भगवान् कृष्ण चन्द ने इसका उपदेश किया है। गीता का सम्यक् अध्ययन करके ही साधक वस्तुतः योगनिष्ठ बन पाता है। ऐसा योग निष्ठ साधक का योग के नाम पर ही शरीर रोमांचित होने लगता है और गीता के अनुसार वह **'ब्रह्मयोगयुक्तात्मा'** के भाव में प्रतिष्ठित होने लगता है। योग शब्द में ब्रह्म की व्यापकता छिपी हुई है।

योग शब्द समाधि का वाचक है। और जीवात्मा परमात्मा की समतावस्था का नाम समाधि है। इस प्रकार से योग को समाधि के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है योग की पराकाष्ठा पर पहुँचने पर **'तदा द्रष्टुः स्वरुपेऽवस्थानम्'** के सूत्र के अनुसार द्रष्टा पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। अपने स्वरूप में अवस्थान ही योगी का लक्ष्य होता है। योग साधना से ही साधक के मल, विक्षेप तथा आवरण दूर हो जाते हैं तथा अग्नि में तप्त लोहा मल

को त्याग शुद्ध हो जाता है। वैसे ही जीवात्मा की शुद्धि होती है। योग को पूर्णतया आत्मसात कर लेने पर योगी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र ने गीता में स्थल–स्थल पर योग साधना के फलस्वरूप इस प्रकार से 'ब्रह्मस्वरूप' होने की बात कही है। तभी जीव का जन्ममरण रूपी बन्धन टूट पाता है और जीव, जीवत्व के दायरे को लाँघकर अक्षय सुख का भागी हो जाता है।

महर्षि पतञ्जलि देव ने 'चित्तवृत्ति–निरोध' को योग कहकर इसकी परिभाषा की है। चित्तवृत्ति निरोध' ही योगी का लक्ष्य है। गीता में भगवान् कहते हैं– दुःख के संयोग का वियोग करा देने वाली विद्या का नाम योग है। जिसकी प्राप्ति बिना उकताये मन से धैर्यपूर्वक लम्बे समय तक अभ्यास करने से होती है। दीर्घकाल तक निरन्तर साधना अपेक्षित है। उपनिषदों में योग की प्राप्ति के अंगभूत साधन भक्तियोग, ज्ञानयोग, हठयोग, राजयोग, लययोग आदि का निरूपण किया गया है। योग के लिये भक्ति करना भक्ति योग, योग के लिये ज्ञान का अवलम्ब लेना ज्ञानयोग, योग के लिये प्राणायामादि क्रियाओं का करना हठयोग, योग के लिये धारणा, ध्यान, समाधि का अभ्यास राजयोग, योग के लिये शब्द ब्रह्म का सहारा लेना लय योग कहलाता है। योग साधना का प्रवेश द्वार मन की एकाग्रता ही है। एकाग्रचित्त हो जाने पर चित्त की शक्तियों का विकास होने लगता है। जितनी–जितनी एकाग्रता बढ़ती जायेगी उतना–उतना साधक ज्ञान विज्ञान के समुद्र में उतरने लगता है। ज्ञान–विज्ञान से संतृप्त योगी कूटस्थ अर्थात् विकार रहित स्थिति को प्राप्त होने लगता है। इसी अवस्था को प्राप्त योगी पूर्णतया विजितेन्द्रिय होता है। उसकी दृष्टि में मिट्टी, पत्थर, सोना एक समान होते हैं। उस योगी में इतनी क्षमता आ जाती है कि अपनी इच्छा मात्र से मिट्टी को सोना बना दे अथवा सोने को मिट्टी बना दे। प्रकृति पर उसका अधिकार होने लगता है।

प्रकृति के आपूरण से एक वस्तु को दूसरी वस्तु में बदल देने की क्षमता आ जाती है। योगी के मन की एकाग्रता पर ही शक्ति की न्यूनता अथवा अधिकता रहा करती है। समाधि सिद्धि हो जाने पर योगी में संयम शक्ति आ जाती है जिसके आधार पर बड़े–बड़े अलौकिक कार्य हुआ करते हैं। समाधिवान् योगी जिस–जिस विभूति, महापुरुष के चित्त में तद्रूपता कर लेता है उस महापुरुष की शक्तियाँ या ज्ञान का संक्रमण योगी में हो जाता है। योग दर्शन में एक सूत्र के द्वारा समझाया गया है कि वीतरागी पुरुषों को लक्ष्य करके तद्रूपता की जाये तो इससे समाधि हो जाती है। गुरुदेव भगवान् बतलाया करते थे कि ब्रह्मपुरी के जंगल में आनन्दकन्द श्री प्रभु जी रहा करते थे। उनके साथ में योगिराज कृपालानन्द जी रहा करते थे। कृपालानन्द जी भगवान् शिव का ध्यान किया करते थे। परिणाम स्वरूप इनमें भी शाम्भवी शक्तियों का नित्य वास रहता था। रामकृष्ण परमहंस देव के जीवन चरित्र का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि वे भगवती काली, महावीर स्वामी, ईसा मसीह तथा अन्य कई धर्म प्रवर्तक महापुरुषों के चित्त

में समापत्ति करके कई–कई दिन उनके भावों एवं चरित्रों से भावित रहा करते थे। चिरस्मरणीय ब्र० गोपालानन्द जी महाराज सम्प्रज्ञात योग की इस अवस्था में दिव्य अनुभूतियाँ, लोक लोकान्तर गमन करके दिव्य पुरुषों का साक्षात्कार करके ज्ञान विज्ञान की सम्पत्ति को प्राप्त कर लिया करते थे। कभी वे ध्रुव लोक में जाकर ध्रुव से भेंट करते तो कभी गुरुनानक देव से विशेष–विशेष प्राणायाम सीखते। सिद्ध सम्प्रज्ञात वाले योगी संसार का बहुत कल्याण किया करते हैं। सम्प्रज्ञात समाधि की पराकाष्ठा में योगी को 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' प्राप्त होती है। यह प्रज्ञा बुद्धि की परम निर्मलता में ही प्राप्त होती है। इस प्रकार की बुद्धि सत्य को ही धारण करती है; असत्य का लवलेश इस बुद्धि में नहीं रहता। सत्वगुण की पराकाष्ठा रहती है। ऋषि मन्त्रद्रष्टा कहे जाते हैं। ऋषियों ने ईश्वरीय ज्ञान को समाधि में प्राप्त किया। मन्त्र के रूप में दिव्य ज्ञान का साक्षात्कार हुआ जिसे ऋषियों ने लोक कल्याण के लिये आगे प्रचारित व प्रसारित किया। वेद का दिव्य ज्ञान योगी महापुरुषों के द्वारा साक्षात्कृत ज्ञान ही है। गुरुदेव भगवान् अपने मुखारविन्द से बतलाया करते थे कि एक बार ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज को सृष्टि उत्पत्ति कैसे हुई यह जानने की इच्छा हुई। वे समाधिस्थ हो गये। समाधि में उनके सामने वेद की एक ऋचा आई।

हिरण्यगर्भ : समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीतः

अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में हिरण्यगर्भ का प्राकट्य हुआ उसी से सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण हुआ। इस प्रकार से ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज सम्प्रज्ञात योग की पराकाष्ठा को प्राप्त महापुरुष थे। भारत के महान योगियों के चरित्र अवलोकन से ज्ञात होता है इसी सम्प्रज्ञात योग के लिये उन्होंने किस तरह से १०–१२ वर्षों तक एकान्त साधना की है। जिसके फलस्वरूप वे स्वयं प्रकाशित हुये और अन्यों को भी प्रकाश दिया। ऐसे योगी एक स्थान पर बैठे–बैठे ही संसार का कल्याण किया करते हैं। उनमें से बहुतों के बारे में लोगों को कोई परिचय नहीं होता किन्तु संकट के समय उनकी रक्षा हो जाती है। सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि को प्राप्त योगी में दो विशेष शक्तियाँ आयत्त रहती है एक तो ऋतम्भरा प्रज्ञा तथा दूसरी चित्त निर्माण की क्षमता। इस क्षमता के आ जाने पर योगी अपने विशुद्ध चित्त सत्व से अनेक चित्त बना लेता है। और फिर शरीर का निर्माण भी हो जाता है। इस प्रकार से योगी एक स्थान पर बैठे–बैठे अनेक स्थल पर रहकर लोक रक्षा एवं युग निर्माण का कार्य करते रहते हैं। सिद्ध योगियों के लिये इस प्रकार के कार्य बहुत सहज ही रहते हैं। सम्प्रज्ञात समाधि में योगी को कुछ न कुछ ज्ञान, अनुभूति बनी रहती है। बुद्धि का व्यापार चलता रहता है। किन्तु इसमें योगियों की बुद्धि अत्यन्त निर्मल होने के कारण उनकी ब्रह्मयोग युक्तात्मा की स्थिति रहा करती है। साधक का प्रारम्भिक स्तर का कार्य तमोगुण और रजोगुण को चित्त से हटाना है। इसे ही सच्चे अर्थ में कर्मयोग कहते हैं।

* * *

चित्त शुद्धि कैसे हो ?

प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा

परमात्मा सर्वव्यापक और सर्वकाल रहने वाली एक व्यापक चेतना शक्ति है। उसकी सत्ता के बिना एक तिनका भी नहीं हिल सकता। जब वही चेतना पंच ज्ञानेन्द्रियों, पंच कर्मेन्द्रियों, पंच प्राणों तथा बुद्धि, चित्त, मन और अहंकार में लिप्त होकर सिकुड़ जाती है तो वह अनन्त चेतन सत्ता असीमित होते हुए भी शरीर में आबद्ध हो जाती है। शरीर का पहला रूप कारण शरीर कहलाता है। दूसरा रूप सूक्ष्म शरीर और तीसरा रूप स्थूल या पाञ्च भौतिक शरीर कहलाता है। कारण शरीर अविद्या अथवा माया के बीच में आ पड़ने से बन गया और उसे ही सत्य मानने का अभिमान रखने वाला चैतन्य ही जीवात्मा, क्षेत्रज्ञ या पुरुष कहलाने लगा। यही कारण कि शरीर हमारे कर्मों का आश्रम स्थान है। पुण्य–पाप के किये गये शुभाशुभ कर्म संस्कार रूप से चित्त में संचित होते रहते हैं। ये कर्म संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण रूप से तीन दशाओं में चेतना को संकीर्ण बनाकर चित्तरूप में मलिन सत्व बना डालते हैं। जिससे अजन्मा, अमरण धर्मा, यह आत्मा कारण शरीर को लेकर जन्म–मरण के चक्कर में भ्रमण करने वाला तथा कर्मानुसार सुख–दुःख को भोगने वाला बन जाता है। यह भोग इन्द्रियों और मन के द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों को ग्रहण करने से होता है। भोग स्थूल शरीर से हुआ करता है। स्थूल शरीर में इन्द्रियों को क्षेत्रज्ञ आत्मा (मनोमय सत्ता) अपनी चेतना का तेज देकर विषयाकार वृत्ति तैयार कर मन से उसका अनुभव कराता है। यदि मन में पापमय प्रारब्ध कर्मों की वृत्तियों का प्रवाह चल रहा होता है तो उस अवस्था में भोग दुःख रूप होता है। यदि उस समय पुण्य के संस्कारों की वृत्तियों के प्रवाह गतिशील है तो सुखात्मक भोग होता है। जिस प्रकार सूर्य के सम्मुख कोई बदली आ जाये तो उसका प्रकाश ढँक जाता है और अंधकार भासित होने लगता है, उसी प्रकार सर्वशक्तिमान प्रकाशरूप परम चेतन परमात्मा का प्रकाश हमारे चित्त में संचित कर्म संस्कारों के प्रवाह के आवरण द्वारा मलिन और संकुचित हो जाता है, यदि किसी उपाय से (वायु के द्वारा या बिजली के द्वारा) बदली का आवरण हटाया जा सके तो सूर्य का प्रकाश व्यापक और प्रखर हो सकता है। उसी प्रकार चित्त के संस्कारों को प्राणायाम, धारणा और ध्यान, मंत्रजप आदि उपायों से हटाया जा सके तो चित्त की मलिनता दूर हो जायेगी जिससे आत्मस्वरूप सच्चिदानन्द में जीवात्मा की पुनः प्रतिष्ठा हो सकती है। मन और चित्त की मलिनता ही परमात्मा की सर्वव्यापक चेतना का अनुभव नहीं होने देती। शास्त्रकारों ने इसीलिए बार–बार यही कहा है हमारा चित्त और मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। **'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।'** जब जीव परमात्मा के मंगल विधान के विपरीत अपने मन के संस्कारों और इन्द्रियों के वेग के वशीभूत होकर कोई कर्म करता है तो उसका फल पापकर्म के परिणाम स्वरूप अधर्ममूलक और दुःख रूप होता है। हमारे अच्छे–बुरे कर्मों के अभ्यास के संस्कार चित्त

में संचित हो जाते हैं। वही संस्कार शुभ अशुभ कर्मों की ओर प्रेरित किया करते हैं। चित्त में बुरे संस्कार इकट्ठे न हो पावें उसके लिये गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने एक उपाय का निर्देश किया–**'तस्मात्सर्वेषु-कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन।'** अर्थात् प्रत्येक क्षण उस परम प्रकाश रूप परमात्मा के साथ योगयुक्त होकर प्रत्येक कार्य को करते रहो। जिससे चित्त में मलिन संस्कारों की वृत्तियाँ क्रियाशील न हो पायें।

सद्गुरु की करुणकृपा शक्ति परमात्म तेज का ही मूर्तरूप है। वह जीव को शुभ और आनन्द रूप प्रवाह की ओर खींचती रहती है किन्तु पूर्वजन्मों के अर्जित कुसंस्कारों की मलिनता के कारण जीव नरक की ओर दौड़ा चला जाता है। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींचती है किन्तु उन दोनों के बीच में कोई लकड़ी का टुकड़ा आ जाय तो चुम्बक की ओर लोहा नहीं खिंच पाता। उसी प्रकार हमारे चित्त के पूर्वार्जित संस्कार हमें ध्यान समाधि की ओर चलने नहीं देते। चित्त बाहरी दिखावे में ला पटकता है। बाहरी वेष रचना के बल पर साधक लोकप्रतिष्ठा की विष्ठा का पुनः कीड़ा बन जाता है। आधि–व्याधि और उपाधि–ये तीनों ही चित्त के मलिन संस्कारों को दूर नहीं होने देती। जब तक चित्त शुद्धि नहीं तब तक आत्मदर्शन की योग्यता कैसे आ सकती है। शास्त्रकारों ने निम्नलिखित दस प्रकार के दुर्भावों के द्वारा दस प्रकार के मन–वचन–कर्म से होने वाले कार्यों को अधर्म, पाप और चित्त की अशुद्धि के कारण माने हैं। वासना ही चित्त की अशुद्धि का मूल कारण है। यह वासना दस भावों द्वारा किये गये कर्मों से बलवती होकर हमारे अन्दर देह बुद्धि दृढ़ कर देती है। जिससे अन्दर आत्मा का प्रकाश ढक जाता है। ये दस कर्म हैं–

(क) मानसिक कर्म–

(१) परधन व गुरुधन के हरण की इच्छा, गुरुभक्तों का अनिष्ट चिन्तन, धार्मिक स्थानों के चढ़ावे को चोरी से अपना बनाकर दुष्कर्मों में व्यय करना।

(२) ध्यान–समाधि का केवल नाम लेकर विषयभोग में ही मन लगाना।

(३) ईश्वर, गुरुदेव और वे ऋषियों की वाणी में अविश्वास तथा स्वयं को ही पंचामृत स्नान से अभिषिक्त कराके योगिराज बनने का ढोंग करना।

(ख) वचन द्वारा पापकर्म

१. पूज्य बड़े भाइयों, माता–पिता तथा विद्वानों का कटु वचनों द्वारा अपमान करना।

२. अपने पेट के लिए असत्य भाषण कर लोगों को ठगना

३. किसी महापुरुष की पीठ पीछे निन्दा करना।

४. सद्गुणी पुरुषों से जलना, उनकी निन्दा करना।

(ग) १. प्रपंच करके और बलपूर्वक परधन का अपहरण करना

२. स्वार्थपूर्ति के लिए प्राणी हिंसा करना या करवाना।

३. पर स्त्री गमन करना।

उपर्युक्त कर्म कृत, कारित या अनुमोदित होने पर चित्त में जो कर्माशय बनाते हैं वे जीव को बन्धन की ओर ले जाकर चौरासी लाख योनियों में घुमाते रहते हैं। यदि कोई सद्गुरु का लाड़ला जीव उनकी करुणकृपा पर पूर्ण विश्वास कर उनके आदेशों में अपने को आबद्धकर जीवन को साधना परायण बना ले तो कृपा और पुरुषार्थ के संयोग से चित्त शुद्धि हो सकती है। चित्त शुद्धि का लक्षण है कि विषयों के प्रति वैराग्य भाव पैदा होकर चित्तशक्ति का उद्रेक होकर उसके अन्तःकरण में त्याग सेवा और भगवत्प्रेम का प्रवाह उमड़ने लगता है ऐसा होने पर ही कोई योगी, ज्ञानी या भक्त बनता है। चित्त शुद्धि के बिना जप–तप, साधन–भजन, संकीर्तन या उपदेश एवं सत्संग आदि उसी प्रकार हमारे मनोरंजन करने के साधन बन जाते हैं, जिस प्रकार आजकल हमारे देश के सिरफिरे नेतागण तीर्थ स्थलों को पर्यटन–केन्द्र बनाने की बड़ी–बड़ी योजनायें बनाकर साधना स्थलों को अपवित्र बनाकर देशोद्धार और जन जीवन को मूल्यहीनता तथा अनैतिकता की ओर धकेल रहे हैं।

आत्मकल्याण चाहने वाले प्राणी को प्रत्येक प्रकार की शुद्धि का सतत् अभ्यास करते–करते शुचितामय जीवन को अपना स्वभाव बना लेना चाहिये। प्रत्येक प्रकार की शुद्धि के अन्तर्गत आहार शुद्धि, शरीर शुद्धि, (अन्न शुद्धि) जल शुद्धि, अर्थशुद्धि, आचरण शुद्धि, स्थान शुद्धि, शरीर शुद्धि, वस्त्र शुद्धि, इन्द्रियशुद्धि, भावशुद्धि तथा मनः शुद्धि एवं चित्त शुद्धि आती है। केवल मिट्टी पानी या साबुन से धोने मात्र से कोई शुद्ध नहीं हो जाता। वास्तविक शुद्धि मन और चित्त की शुद्धि है। यदि कोई दुराचारी है तथा मन में कपट रखता है। दुनिया को दिखाने के लिए तरह–तरह के पाखण्ड करता है तो वह अपनी काया को कितना ही साफ–सुथरा रखे, चाहे रेशमी धवल–वस्त्र धारण करें, वह अशुद्ध है।

आचार्य ब्रहस्पति कहते हैं–

"भृत्तिकानां सहस्रेण चोदकानां शतेन च।
न शुद्धयति दुराचारो भावोपहत चेतनः।।

अर्थात् हजारों स्थान के तीर्थों की रज में शरीर रगड़ने और सैकड़ों बार पवित्र नदियों के जल में कुम्भ स्नान करने या पञ्चमृत से अभिषेक करने से दुरात्मा व्यक्ति की शुद्धि नहीं होती क्योंकि स्वार्थ, अहंकार और दुर्भावनाओं से उसका चित्त इतना मलिन हो जाता है कि उसके अन्दर की आत्म चेतना मलिन सत्व प्रधान हो जाती है। उसके अन्दर की आत्म शक्ति ऋणात्मक (Negative force) हो जाती है। ऐसा व्यक्ति गुरुजी बनकर किसी को दीक्षा या शास्त्र उपदेश देता है तो स्वयं तो पाप कमाता ही है, जिसे वह मंत्रोपदेश करता है उसके अन्दर भी उसके भावों की मलिनता संक्रमित हो जाती है जिससे उनके चेले आत्मोद्धार का मार्ग न मिलने के कारण पाखण्ड और प्रपंचमय जीवन यापन करने लगते हैं। आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास।'

महर्षि याज्ञवल्क्य ने धर्म परायण जीवन को आत्मोत्थान का साधन बताया है। धर्म परायण जीवन बनाने के लिए नौ साधन होते हैं—

'अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषाम् धर्मसाधनम्।।

अर्थात्—अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, अन्तर्बाह्य हर प्रकार की शुद्धि, इन्द्रियों का संयम, दान, दया, मन और चित्त की वृत्तियों का निरोध और क्षमा ये सभी धर्म परायण होने के साधन हैं। इनका जीवन में हर परिस्थिति में पालन करते रहने से एक दिन साधन शुद्ध अन्तःकरण होकर आत्म साम्राज्य में अधिष्ठित हो जाता है। जिसका स्वयं का जीवन शुद्ध और पवित्र है वह दूसरों को भी पवित्र बना सकता है। महाभारत में भगवान वेदव्यास ने जीवन को दिव्य बनाने के लिए पाँच प्रकार की शुद्धि को आवश्यक माना है। वह है—मन की भावना की शुद्धि, कर्म की शुद्धि (अहिंसा, दयायुक्त सात्विक यज्ञमय निष्काम कर्म) कुल की शुद्धि (पवित्र माता–पिता से जन्म तथा जातकर्म आदि सभी संस्कार वेदविहित रीति से करने की स्थिति) शरीर तथा वाणी का शौच। इन शुद्धियों में सर्वोत्तम मन और हृदय (भावशुद्धि) का शौच होता है। इसी के होने पर मनुष्य स्वर्गादि लोकों की ओर गति करने की ऊर्ध्वोन्मुखी प्राणशक्ति प्राप्त कर पाता है।

''पञ्चस्वेतेषु शौचेषु हृदि शौचं विशिष्यते।
हृदयस्य च शौचेन स्वर्गं गच्छन्ति मानवः। महाभारत

महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्र में शौच का परिणाम बताया है—

''शौचात्स्वांग जुगुप्सा परैरसंसर्गः।'

इसका अभिप्राय है कि शौच का अभ्यासी हो जाने पर व्यक्ति को अपने पञ्चभूतात्मक एवं त्रिगुणात्मक शरीर के मलिन अंगों से घृणा (अनासक्ति) और अन्य लोगों के अंगों को भी मलिन जानकर उनके साथ संसर्ग न रखने का उसका स्वभाव (असंगता) हो जाता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति विकसित होने का परिणाम क्या होता है ? इस सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि का कथन है—**'सत्वशुद्धि सौमनस्य–एकाग्रयेन्द्रियजयात्मदर्शन योग्यत्वानि।'** अर्थात् मन और चित्त की शुद्धि होने से भाव और संस्कारों का शोधन हो जाता है। अन्तःकरण की शुद्धि से चित्त का दर्पण विमल हो जाता है। जिससे मन की प्रसन्नता मन की एकाग्रता इन्द्रिय संयम दृढ़ होकर आत्म साक्षात्कार होने की योग्यता उत्पन्न हो जाती है।

चित्त शुद्धि एक दिन के मंत्रजप, ध्यान या समाधि के अभ्यास से नहीं होती। यह चित्त अनेक जन्मों के कार्मिक, आणविक और अविद्याजन्य संस्कारों से इतना मलिन हो चुका है कि इसको प्रत्येक श्वास के साथ आत्म चेतना को जाग्रत रखकर अनेक प्रकार के उपायों का लम्बे समय तक लगातार मनोयोगपूर्वक अभ्यास किये बिना आसानी से शुद्ध नहीं किया जा सकता।

जटा–जूट, दाढ़ी, माला, रंग–बिरंगे वस्त्रों को धारण कर आत्म गौरव की भावना से मदान्ध होने वाले अपने को साधु, वैरागी और योगिराज कहलाने वाले शास्त्रों की कसौटी पर अपने जीवन को जाँच कर देखें तो वास्तविकता समझ में आने लगेगी। शास्त्र कहते हैं कि जब तक व्यक्ति में किसी भी प्रकार का देहाभिमान (आधि, व्याधि, उपाधि) रहता है तब तक वह आत्मज्योति के दर्शन से वंचित रहता है। जिन उपायों से देहाभिमान गलित हो जाय और प्रकृति–पुरुष विवेक उत्पन्न हो जाय वे ही साधन साधनामय जीवन बनाने वाले हुआ करते हैं।

"प्रधानाविवेकादन्या विवेकस्य तद्धानौ हानम्।

(सांख्य दर्शन १/१/५७)

अर्थात् प्रकृति–पुरुष का अविवेक ही बन्धन का कारण है। और उसका विवेक ही मोक्ष का कारण है। हमारा चित्त प्रकृति का ही विकार और परिणाम है। चित्त नाना प्रकार के संस्कार संचित करके कर्माशय या संस्काराशय में गुप्त रूप से रखता है वही हमारे शुभाशुभ कर्मों के बीज होते हैं जैसे ही उन संस्कारों के अनुरूप परिस्थिति और वातावरण उपस्थित होता है वैसे ही ये स्मृतिरूप में अंकुरित होकर कर्मरूप में वृक्ष की भाँति विशाल बन जाया करते हैं। भगवान श्री राम को शिक्षा देते हुए महर्षि वशिष्ठ बार–बार उन्हें हिताहित, पथ्यापथ्य, धर्माधर्म और कर्तव्य का विचार करते हुए कर्म करने के लिए सावधान करते हैं। जीने को तो पेड़ पौधे पशु–पशु और अज्ञानी प्राणी भी जीते हैं। किन्तु उसी का जीवन उन्नत हो पाता है, जो सदसद् का विवेक कर कर्म करता है। उसके कर्म बन्धन कारक नहीं हो पाते, बल्कि संस्कारों का क्षय करने वाले हुआ करते हैं चित्त एक प्रकार का चश्मा है। जैसा सात्विक, राजसिक या तामसिक चित्त रूपी चश्मा होता है वैसा ही संसार प्रतीत हुआ करता है। महर्षि वशिष्ठ श्री राम को अत्यन्त रहस्य और मर्म की बात बताते हैं–

चित्तमेव संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।

यच्चित्तस्तन्मयो मर्त्यो गुह्यमेतत्सनातनम्।। योग वशिष्ठ

मनुष्य अपने चित्त के आधीन होकर सारे कार्य करता है। उसका व्यवहार चित्त के संस्कारों और गुणों पर निर्भर है। इसलिए चित्त को ही संसार कहा जाता है। इस चित्त की अशुद्धि से ही जीव अष्टविध पाशों में आबद्ध होकर बन्दर की तरह नाना प्रकार के नाच नाचता रहता है। आठ पाश हैं– घृणा, शंका, भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, शील और अभिमान। पाशबद्ध जीव पशु कहलाता है और उनसे मुक्त होने पर वही सदाशिव हो जाया करता है।

चित्त का प्रभाव शरीर इन्द्रियों और मन तथा बुद्धि पर भी पड़ता है। अवधूत गीता में उल्लेख है कि सप्तधातु निर्मित हमारा शरीर चित्त के आधीन होता है। चित्त यदि शुद्ध और प्रसन्न है तो शरीर मन और इन्द्रियाँ स्वस्थ एवं शक्ति बल युक्त रहती हैं। चित्त के मलिन होने

पर ये सभी रुग्ण हो जाते हैं। अतः सदा सर्वदा चित्त की चिन्ता और रक्षा करते रहना चाहिये।

'चित्तायत्तं धातुबद्धं शरीरं नष्टे चित्ते धातवोयान्तिनाशम्।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीय स्वस्थे चित्ते धावतः सम्भवन्ति

चित्त के स्वस्थ रहने पर मनुष्य का रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा, रज–वीर्य, ओज–तेज, स्मृति–मेधा–बुद्धि सभी कुछ ठीक–ठाक और स्वस्थ रहते हैं।

जब तक साधक का चित्त साधिकार रहता है तब तक वह जन्ममृत्यु जरा व्याधि के दुःखों से मुक्त नहीं हो पाता। इस संसार में दो प्रकार के चित्त वाले मनुष्य हैं–कामनायुक्त और निष्कामतायुक्त। कामना और वासनायुक्त व्यक्ति नाना प्रकार के कर्मकाण्ड से शनैः शनैः अपने चित्त की शुद्धि करते हुए अपने अधिकार को बढ़ाते चलते हैं। कर्मकाण्ड के फलस्वरूप वे स्वर्गादिलोकों को प्राप्त करके कर्म भोग पूरा होने पर फिर भूलोक में जन्म ग्रहण करते हैं। जिनका चित्त जप ध्यान समाधि से शुद्ध होकर निष्काम हो जाता है, उन्हें जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त होती है। यदि इन सतोगुणी योग निष्ठा के कर्मों में अहंकार बुद्धि हो गयी तो यात्री मंजिल से लौटकर फिर नीचे उसी तरह आ जाता है जैसे साँप–सीढ़ी का खेल खेलने वाले लोग ऊपर पहुँचकर साँप के मुँह में दाँव पड़ जाने पर फिर उसकी दुम जिस नम्बर पर होती है वहीं नीचे उनकी गोट आ जाती है। पुनः उन्हें अभ्यास करके अपनी गोट को ऊपर ले जाना पड़ता है। शास्त्रकार कहते हैं–

न मुक्तिर्जपनाद्धोमादुपवास शतैरपि।
ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहभृत।।
उत्तमो ब्रह्म सद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः।
स्तुतिर्जपोऽधमो भावो बहिः पूजा धमा धमा।।

म.नि.तं. ११४–१२२

अर्थात् जब तक चित्त में विषय–चिन्तन, कपट, कुटिलता स्वार्थपरता, हिंसा, राग–द्वेष, अहंभाव और वासना भरी हुई है तब तक कोई आलसी और निकम्मा सम्मान पाने की इच्छा का साज सजाकर जप, होम और उपवास करता है तो उससे कुछ लाभ होने वाला नहीं है। जब चित्त शुद्धि होकर सोऽहं भाव स्थिर हो जायगा तब उसको मुक्त होने में कोई सन्देह नहीं होगा। क्योंकि वासना ही बन्धन की जड़ है। उसका समूलोन्मूलन उपासना के बिना सम्भव नहीं है। उत्तम उपासना स्वरूप प्रतिष्ठा या दृष्टा जीव का अपने निज स्वरूप में स्थिर हो जाना है। यह मनोन्मनी या सहज समाधि की स्थिति है जिसे उत्तम स्थिति माना गया है। विभिन्न प्रकार की ध्यान साधना करके चित्त की वासनाओं का तन्वीकरण करना मध्यम स्थिति है। स्तुति और जप अधम स्थिति वाली संसारी कामासक्त लोगों की साधना है। उनके लिए यही उपयोगी है। बाह्य शोडषोपचार पूजा को सबसे कम महत्त्व का प्रारम्भिक उपाय माना गया है।

जिसके चित्त में मलिना वासना विद्यमान होती है उसके प्राण और मन दोनों चंचल बने रहते हैं। यह वासना विद्वान से लेकर मूर्ख तक सभी को अपने आवरण से ढककर किंकर्तव्य विमूढ़ बनाकर रखती है। वासना के तीन रूप हैं पहली लोक वासना यह मान–सम्मान और यश प्राप्त करने की चाह में चित्त को व्याकुल बनाये रखती है। दूसरी शास्त्र वासना–ज्ञानी होने का भ्रम पालने का काम करती है। तीसरे प्रकार की वासना देह वासना कहलाती है। इनमें से किसी वासना के रहते यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता। ये शुभाशुभ वासना दो दिशाओं में खींचतान करती है। प्रारम्भ में अशुभ वासना को शुभवासना से नियंत्रित करना ठीक है। बाद में शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की वासनाओं को उसी प्रकार फेंकना श्रेयस्कर है जैसे कि काँटा लगने पर दूसरे काँटे की सहायता से लगा हुआ काँटा पैर से निकाल लेते हैं फिर दोनों काँटों को फेंक दिया जाता है।

चित्त शुद्धि के उपाय–जिस प्रकार मदमत्त गज को अंकुश के बिना वश में करना असम्भव है उसी प्रकार बिना शास्त्र और गुरुदेव की उपदिष्ट युक्तियों के चित्त को वश में करना कठिन है। मुक्तिकोपनिषद् में चित्तजय और उसकी शुद्धि के जिन उपायों का उपदेश है वे युक्तियाँ हमेशा कारगर सिद्ध होंगी। ये युक्तियाँ हैं–

'अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगति रेव च।
वासना संपरित्यागः प्राणस्पन्द निरोधानम्।
एतास्तु युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल।।

अध्यातम विद्या का सतत स्वाध्याय, सज्जनों की संगति वासना का परित्याग और प्राणायाम–ये चार युक्तियाँ चित्त को आत्मा के वश में करके रखती हैं।

चित्त को शुद्ध करने के कुछ उपायों का यहाँ उल्लेख किया जाता है। जिन्हें अपनाकर महापुरुषों ने आत्मलाभ किया है :–

१. अपनी रसनेन्द्रिय को जितेन्द्रिय बनाने के लिए सर्वप्रथम काबू में करें। यह इन्द्रिय बहुत भोजन और अति का बोलने से प्राणी को संकट में डाल देती है। अतः समय पर हल्का भोजन तथा मितहित भाषी बनने का अभ्यास करें।

२. इन्द्रियों का सेनानायक चित्त है। अतः उसको वश में करने के लिए एकतत्व का या ॐ का मानसिक जप करता रहे। जैसे जूता पहनने से सभी भूमि चमड़े से ढक जाती है वैसे ही निरन्तर अपने गुरुमंत्र अथवा प्रणव ॐ का मानसिक जाप करने से संस्कारों का बहिर्मुखी प्रवाह बन्द हो जाता है। सर्वत्र दिव्य चेतना का प्रसार होने लगता है।

३. प्राणायाम रेचक पूरक के साथ बहिर्कुंभक और आन्तरिक कुम्भक का अधिक अभ्यास करने से चित्त की वासना का अंकुर नष्ट हो जाता है। वासना से प्राण स्पन्दन होता है और प्राण स्पन्दन से चित्त में वृत्तियों का प्रवाह चल पड़ता है। योग वाशिष्ठ में संकेत है कि–

द्वे बीजे चित्त वृक्षस्य प्राणस्पन्दन वासने।
एकस्मिंश्च तयो क्षीणे क्षिप्तं द्वे अपि नश्यतः।।

इस चित्त रूपी वृक्ष का जन्म प्राणों की हलचल और वासना रूपी दो बीजों के संयोग से होता है। इनमें से किसी एक के नष्ट करने पर दूसरा अपने आप नष्ट हो जाता है। बीजांकुर न्याय से दोनों के नाश का उपाय विचार या प्राणस्पन्दन–निरोध में से किसी एक का साधन करता है।

४. वासना को विचार से नष्ट किया जायगा तथा आत्मज्ञान के विज्ञान से चित्त की अशुद्धि का नाश होगा तथा प्राण के संयम से मनोनाश होगा। अतः वासना क्षय, विज्ञान और मनोनाश के उपायों का एकसाथ लम्बे समय तक अभ्यास करते रहने से समाधि की अवस्था प्राप्त होगी। जहाँ मनोलय और चित्त लय हो जायगा। जीवन में असंगता तथा दुनियादारी के चक्कर से बचाकर रखने से तथा शरीर की नश्वरता का सदा विचार करते रहने से वासना क्षय हो जायगा। वासना के निर्मूल होते ही चित्त फिर चित्त नहीं रहेगा। उस अवस्था को जीवन्मुक्त और विदेह मुक्त अवस्था कहा गया है। इस अवस्था को प्राप्त कर साधक वैश्वानर अग्नि की भाँति पावन हो जाता है अन्यथा श्वान की भाँति डंडे खाने वाला बना रहता है। कहा भी गया है–

यो वर्तते शुचित्वेन स वैश्वानर उच्यते।
यो वर्ततेऽशुचित्वेन स वैश्वानर उच्यते।।

❊ ❊ ❊

मनीं ईश्वराचे चरण। सर्वभावे त्यास शरण।
योजे ऐसे अन्तःकरण। योग म्हणावे त्याला।।

(यथार्थ दीपिका)

मन में ईश्वर के चरण हों, सब प्रकार से चित्त उन्हीं के शरण हो, ऐसा अन्तःकरण हो जाये, इसी का नाम योग है।

भारतीय संस्कृति एवं योग

लेखक—पूर्णचन्द्र पन्त

समूचे विश्व में भारतीय संस्कृति की महत्ता अन्यान्य संस्कृतियों की अपेक्षा सविशेष एवं अतुलनीय मानी जाती है। भारतीय संस्कृति वैदिक संस्कृति है। वेद ही इसका मूल है वेद अनादि है अतः यह भी अनादि है। "वेद" का अर्थ है—ज्ञान। अतः वेद हमें सत्य का ज्ञान कराते हैं। उस अनन्त, अखण्ड, अव्यक्त परम ज्योतिस्वरूप तथा सर्वथा चिन्मय परमात्मा की सर्व व्यापकता का अनुभव ही सत्य का ज्ञान है। और इसे ही दूसरे शब्दों में योग कहा जाता है।

योग हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर चलना सिखाता है। यही भारतीय संस्कृति एवं वैदिक वांङमय का मुख्य उद्देश्य है। हमारे पूर्वज अपनी दैनिक उपासना में प्रभु से यह प्रार्थना करते आये हैं—

'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतंगमय।"

अर्थात् हे प्रभु! मुझे असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाओ। भारतीय संस्कृति किसी सम्प्रदाय विशेष का ही मंगल—चिन्तन नहीं करती, बल्कि जन—जन के कल्याण की अपेक्षा रखती है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद दुःखभाक् भवेत्।

सभी लोग सुखी रहें, सब लोग निरोग हो जायें, सभी कल्याण देखें, किसी को लेशमात्र भी दुःख न हो। यही भारतीय संस्कृति का मूल मन्त्र है।

भारतीय संस्कृति अनेकरूपा है। **"विविधता में एकरूपता और अनेकता में एकता"**, यही भारतीय संस्कृति की विशेषता है। हमारी संस्कृति में अनेकों पंथ एवं सम्प्रदाय हैं, किन्तु लक्ष्य सबका एक अर्थात—आत्मसाक्षात्कार ही है। चाहे कोई धर्म हो, चाहे कोई सम्प्रदाय हो, उनकी साधना अथवा उपासना पद्धति किसी भी रूप में क्यों न हो, किन्तु **"सर्वे पदाः हस्तिपदे निमग्ना"** अर्थात्—सभी पैर हाथी के पैर में समा जाते हैं, इस सिद्धान्त के अनुसार ये अन्त में उसी अनन्त योग—सागर में विलीन हो जाते हैं।

भारतीय संस्कृति परोपकार, त्याग एवं कर्तव्य—परायणता की सजीव मूर्ति है। महाराजा शिवि की परोपकारिता, महर्षि दधीचि का परोपकार हेतु आत्म—बलिदान, राजा हरिश्चन्द्र की कर्तव्यपरायणता तथा एकलव्य की गुरुभक्ति इस बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं। अपनी इस आदर्श संस्कृति के बल पर ही भारत अनादिकाल से एक आध्यात्मिक भाव सम्पन्न देश रहा है तथा यह समस्त जगत का आध्यात्मिक गुरु रहा है। उसने स्वयं ही प्रकाश में रहना नहीं सीखा, प्रत्युत वह दूसरों को प्रकाश देता आया है। भारतीय संस्कृति **"वसुधैव कुटुम्बकम्"**, के

सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करती है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद् तथा धर्मशास्त्र प्राणीमात्र के कल्याण की भावना से ओतप्रोत है। यजुर्वेद का निम्नलिखित मन्त्र हमें यही शिक्षा देता है कि हम प्राणिमात्र को मित्र दृष्टि से देखें। यथा......

मित्रस्य चक्षुषा मा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम। मित्रस्याहम् चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

श्रीमद्भगवद्गीता में जगदात्मा श्री कृष्ण स्वयं अपने मुखारविन्द से इस बात की पुष्टि करते हैं....................

सर्वभूतेषु चात्मानं, सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा, सर्वत्र समदर्शिनः।।

अर्थात् समदर्शी योगी सब प्राणियों को अपने में तथा अपने में सब प्राणियों को देखता है।

भारतीय दर्शन हमें बार–बार यही प्रेरणा देती है कि हम दिव्य योगमय जीवन अपनाकर आत्मसाक्षात्कार का प्रयास करें। जैसे......

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य बरान्निबोधत। (कठोपनिषद १४)

अर्थात्–अरे मनुष्यो ! तुम अज्ञानरूपी निद्रा में सोये मत रहो। अब भी समय है शीघ्र सावधान हो जाओ और महापुरुषों की शरण में जाकर उनके उपदेश से आत्मकल्याण का मार्ग अपनाओ।

भारतीय संस्कृति योग से अनुप्राणित है। वह हमें बारम्बार सचेत करती है, कि हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य तथा राग–द्वेष आदि विकारों पर विजय पाकर अपनी सोई हुई शक्ति को जाग्रत करें। हमारे धर्म ग्रन्थ कहते हैं कि जीव ईश्वर का अंश है, किन्तु माया के वश में होने से वह बद्ध है।

अतः मनुष्य को चाहिए कि वह यम–नियमों का पालन करते हुए अभ्यास तथा वैराग्यरूप उपायों से मनोनिग्रह करके आत्मसाक्षात्कार का लाभ उठायें। योगशास्त्र के आधारभूत इन सिद्धान्तों का रामचरितमानस में बड़े ही सुन्दर ढंग से सरल भाषा में वर्णन किया गया है। जैसे.......

परमधर्ममय पय दुहि भाई। अवटे अनल अकाल बनाई।।
तोष मरुत तब क्षमा जुड़ावै। धृति सम जामन देई जमावै।।
मुदिता मथै विचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी।।
तब मथि काढ़ि लेई नवनीता। विमल विराग सुभग सुपुनीता।।
योगअग्नि करि प्रगट तब, कर्म शुभाशुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ज्ञानघृत, ममता मल जरि जाइ।।
तब विज्ञान निरूपिणि, बुद्धि विशद घृत पाइ।
चित दिया भरि धरै दृढ़, ममता दिअरि बनाइ।।

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीप शिखा सोई परम प्रचंडा।।
आतम अनुभव सुख सुप्रकाश। तब भवमूल भेद भ्रमनाश।।

हे भाई। परमधर्मरूपी दूध को दुह के निष्कामतारूपी अग्नि में औटावै। फिर संतोष और क्षमारूपी हवा से उसे ठण्डा करे और धैर्य का जामन देकर उसे जमावे।

तब प्रसन्नतारूपी हाथों द्वारा विचाररूपी मथानी से उसे मथे। इन्द्रिय दमन उसका आधार हो और सत्यवाणी उसकी डोरी हो। इस प्रकार मथकर वैराग्यरूपी सुन्दर पवित्र मक्खन निकाल लें।

फिर योगअग्नि प्रकट करके शुभ–अशुभ कर्मरूपी लकड़ी जलाकर बुद्धि से ठण्डा कर ज्ञान रूपी घी निकाल लें और जब ममता रूपी मैल जल जाये तब ज्ञान का निरूपण करने वाली बुद्धि रूपी निर्मल घी को पाकर चित्तरूपी दीपक में भरकर ममतारूपी दीवट बनाकर उस पर रखें।

"सोहमस्मि" यह जो अखिण्डत वृत्ति है वह अत्यन्त प्रचण्ड दीपशिखा (ज्योति) है। तब आत्मा का ज्ञान होने से सुख अपने आप प्रकाशित होता है तब संसार की जड़ भेदबुद्धि तथा भ्रम का नाश हो जाता है।

वेदान्त इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है, क्योंकि यह त्रिविध, प्रकृति सत्व, रज, तम तथा पंचमहाभूत–पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश से व्याप्त है। हमारा पिण्डरूप देह भी इन्हीं तत्वों का विकार है। यह देह पंच–महाभूतों से बना है और इन महाभूतों की पंचतन्मात्रायें ही अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ही हमारी इन्द्रियों के अनुभव के विषय हैं। गीता तथा कठोपनिषद् में इसी बात को निम्न प्रकार से समझाया गया है. .....

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था, ह्यर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिः बुद्धेरात्मा महान परः।।
महतः परमव्यक्तम, व्यक्तात्पुरुष परः।
पुरूषान्न परं किंचित्सा, काष्ठा सा परा गतिः।।

अर्थात इन्द्रियों से बलवान विषय हैं। ये साधक की इन्द्रियों को बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। अतः साधक को चाहिए कि वह इन्द्रियों को विषयों से दूर रखें, विषयों से बलवान मन है। मन से भी बलवान बुद्धि है। अतः बुद्धि के द्वारा विचार करके मन को राग–द्वेष रहित बनाकर अपने वश में कर लेना चाहिए। बुद्धि से भी बलवान ईश्वर की अव्यक्त माया है और उससे भी बलवान इन सबके स्वामी परम पुरुष परमेश्वर हैं, जो कि गुणातीत हैं और बल, ज्ञान एवं क्रिया शक्ति के आधार है। दूसरे शब्दों में यह समस्त जगत ईश्वर की अव्यक्त माया से ही उत्पन्न हुआ है और ब्रह्माण्ड में जो–जो तत्व है वे सभी सूक्ष्म रूप से देह में विद्यमान हैं।

मन्त्रराज गायत्री मन्त्र में सात व्याहृतियाँ हैं, जिन्हें वाह्य जगत में सप्तलोक कहा जाता है।

योगशास्त्र के अनुसार ये सप्तलोक मनुष्य के शरीर स्थित षटचक्र हैं, जिन्हें वेधती हुई कुण्डलिनी शक्ति सहस्त्रार (ब्रह्म–चक्र) में पहुँचती है और वहाँ अमृतपान करके जीव को जीवन्मुक्त कर देती है।

शरीर में सप्तलोकों की स्थिति तथा षट-चक्रों का स्थान निम्न प्रकार से है–

सप्तलोक	षटचक्र	पंचमहाभूत तत्व	गायत्री मन्त्र की व्याहृतियाँ	चक्रों के अधिष्ठातादेव
१. भूलोक	मूलाधार	पृथ्वी तत्व	ॐ भूः	गणेश
२. भुवः लोक	स्वाधिष्ठान	जल तत्व	ॐ भुवः	ब्रह्मा
३. स्वर्ग लोक	मणिपूरक	अग्नि तत्व	ॐ स्वः	विष्णु
४. महः लोक	अनाहत	वायु तत्व	ॐ महः	रूद्र अथवा काली
५. जन लोक	विशुद्ध	आकाश तत्व	ॐ जनः	सदाशिव
६. तप लोक	आज्ञा	आत्म तत्व	ॐ तपः	गुरूदेव
७. सत्य लोक	ब्रह्मचक्र–सहस्त्रार	ब्रह्म तत्व	ॐ सत्यं	गुरूदेव

ये रहे शास्त्रोक्त योगसिद्धान्त। अब व्यवहार में योग का प्रभाव देखिये–

हिन्दुओं का प्रत्येक मांगलिक कार्य गणेश पूजन से आरम्भ होता है। क्योंकि गणेशजी स्वयं ही योगी के प्रतीक है। उनकी लम्बी सूँड प्राणायाम की ओर संकेत करती है। लम्बोदर (बड़ा पेट) मितभाषी बनने की प्रेरणा देता है। छोटी आँखे तत्वदर्शी बनने का उपदेशी देती है। उनके लम्बे कान बहुश्रुत बनने (ज्ञानार्जन करने) की शिक्षा देते हैं और उनका वाहन मूषक चित्तवृत्तियों पर संयम करने का संकेत करता है।

भारतीय वेशभूषा, रीति–रिवाज तथा आहार–विहार योग से पूर्णतया प्रभावित है। श्वेत रंग सतोगुण का प्रतीक है। अतः सतोगुण की अभिवृद्धि के लिए हमारे पूर्वज सफेद वस्त्र को महत्व देते आये हैं। कोपीन धारण करने से ब्रह्मचर्य के पालन में सहायता तो मिलती ही है, साथ ही और भी बहुत से लाभ हैं, कोपीन धारण करने से कुण्डलिनी–शक्ति के जागरण में सहायता मिलती है, इससे गृहिणी नाड़ी यथार्थ स्थिति में रहती है।

पुरुषों की पगड़ी तथा स्त्रियों का शिरस्त्राण–वस्त्र ब्रह्माण्ड (सहस्त्रार) को गरमी सरदी से बचाये रखता है।

शिखा सूत्र (चोटी) ब्रह्मचक्र का बोध कराता है। यज्ञोपवीत यम–नियमों का पालन करने का संकेत करता है। उसे ब्रह्मसूत्र भी कहा जाता है। यज्ञोपवीत के तीन सूत्र–सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के प्रतीक हैं और निर्गुण ब्रहमा का बोध कराते हुए गुणातीत बनने की प्रेरणा

देते हैं। यज्ञोपवीत के छः तन्तु शरीरस्थ षड्रिपुओं–काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य पर विजय पाने की प्रतिज्ञा करवाते हैं।

हिन्दुओं में तिलक लगाने की प्रथा अनादि काल से चली आई है। तिलक अथवा रोली का टीका माथे पर आज्ञाचक्र के स्थान पर ही लगाया जाता है, क्योंकि आज्ञाचक्र ही गुरुदेव का स्थान है और वहीं श्री सदाशिव का वास है। अतः चन्दन लगाने का अभिप्राय स्वयं को चन्दन लगाने से नहीं है, बल्कि ईश्वर की प्रसन्नता के लिए अपने माध्यम से उसी सर्व–शक्तिमान को चन्दन लगाया जाता है।

स्त्रियाँ सिंदूर को सौभाग्य का सूचक मानती हैं और अपने पति की दीर्घायु की कामना से ही उसे धारण करती हैं। इसका एक मात्र कारण है, कि भारतीय नारी पति को ही अपना गुरु एवं सर्वस्व मानती है और उसकी उपासना हेतु आज्ञाचक्र पर सिंदूर धारण करती हैं।

स्त्रियों के कर्णफूल और पुरुषों के कुण्डल योग से विशेष सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि कान ही वह इन्द्रिय है, जिससे साधक के अन्दर गुरु शक्ति का संचार होता है। कान से ही मंत्र दीक्षा दी जाती है। कान का आज्ञाचक्र के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि सुषुम्ना नाड़ी भी कर्णेन्द्रिय के निकट है। नामकरण संस्कार के समय बालक के कान में नामोच्चार करके ही उसे भविष्य में उस नाम से पुकारा जाता है। यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर बालक का कर्णवेध संस्कार भी किया जाता है। उस अवसर पर पुरोहित द्वारा गायत्री मन्त्र की दीक्षा कानों में ही दी जाती है। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार के प्रायश्चित के लिए कान पकड़ने की प्रथा हमारे देश में आज भी विद्यमान है। मुसलमान लोग कान छूकर ही तोबा किया करते हैं। कान शरीर का एक महत्वपूर्ण अंग है एवं उसका योग से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी कारण योगिराज भगवान शंकर भी कानों में कुण्डल धारण किये रहते हैं।

भारतीयों में व्रत रखने का काफी प्रचलन है, जो कि अन्तःकरण की शुद्धि के लिए अनिवार्य ही है।

भारतीय संस्कृति आहार–शुद्धि को विशेष महत्व देती है, क्योंकि आहार–शुद्धि के बिना योगमार्ग में प्रगति असम्भव है। योग–शास्त्र का कथन है–

''आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः, सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः, स्मृतिशुद्धौ सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।

भारतीय जन–जीवन योग से पूरी तरह प्रभावित है। प्रत्येक प्रकार के मांगलिक कार्यों में या मन्दिर में शंख, घड़ियाल तथा नगाड़े बजाने का उद्देश्य अपने इष्ट का आवाहन तथा नादब्रह्म की अभिव्यक्ति है।

भारत में प्रचलित तरह–तैरह के शकुन एवं अपशकुन योगविद्या का ही समर्थन करते हैं।

सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निदेव की उपासना प्रकारान्तर से योग–साधना ही हैं, क्योंकि इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना को क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्नि नाम से भी पुकारा जाता है।

भारतीय जन जीवन में तीर्थों का बड़ा महत्व है। हिन्दुओं का विश्वास है कि प्रयाग–राज (त्रिवेणी संगम) में स्नान करने से मोक्षलाभ होता है।

योगशास्त्र के अनुसार भ्रूमध्य में स्थित आज्ञाचक्र त्रिवेणी का ही प्रतीक है, क्योंकि वहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती रूप तीन नाड़ियों–इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का संगम है। अतः आज्ञाचक्र पर संयम कर उसे सिद्ध कर लेने से मनुष्य निस्सन्देह जीवन्मुक्त हो जाता है।

तीर्थ क्या है ? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। उत्तर स्पष्ट है, कि सिद्धसेवित स्थान ही तीर्थ कहलाते हैं, क्योंकि सिद्धयोगी जिस स्थान पर थोड़े समय के लिए भी चले जाते हैं उसे अपनी पावन चरणरज से पुनीत कर देते हैं। वे अपनी साधना से उन स्थानों पर दिव्य परमाणुओं का संचार कर देते हैं। सिद्धों के साधना–स्थल या तो गंगा–यमुना के तट रहे हैं या हिमालय के हिमाच्छादित दुर्गम पर्वत शिखर। अतः कैलाश, मानसरोवर, बद्रीनाथ, केदारनाथ, अमरनाथ, पशुपतिनाथ तथा द्वारिका, जगन्नाथ, रामेश्वरम्, हरिद्वार, काशी प्रयाग एवं मथुरा आदि पुनीत स्थानों की गिनती भारत के प्रमुख तीर्थों में की जाती है।

हमारे विविध त्योहार एवं मेले भी धार्मिक भावनाओं का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक प्रकार के उत्सव की कोई न कोई पृष्ठभूमि अवश्य होती है, जो कि नैतिकता को बल देती है।

उदाहरणार्थ–विजय दशमी का पर्व हमें यह शिक्षा देता है कि हम मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह चरित्रवान बनें, भरत की तरह निष्कामभाव से अपने कर्तव्य का पालन करें, तथा काम, क्रोध, लोभ आदि अपने रिपुओं पर विजय प्राप्त करके जन–जन का कल्याण करें। इसका यह भी अभिप्राय है कि हम आसुरी सम्पदाओं पर विजय प्राप्त करके अपने अन्तःकरणरूपी लंका पर विभीषण रूपी दैवी सम्पदाओं को प्रतिष्ठित करें।

मंत्रविद्या एवं तन्त्रविद्या के क्षेत्र में भी भारतीय संस्कृति योग से प्रभावित है। वस्तुतः मन्त्रविद्या योग की ही देन है। योगशास्त्र में इसे मन्त्रयोग की संज्ञा दी गई है। मन्त्र एवं तन्त्र विद्या संकल्प शक्ति पर आधारित है। तान्त्रिक लोग संकल्पशक्ति से बड़े–बड़े चमत्कारपूर्ण कार्य कर डालते हैं। पाश्चात्य देशों में इन दिनों संकल्पशक्ति पर कई प्रकार के परीक्षण किये जा रहे हैं। इस अद्भुत शक्ति को कुछ लोग टेलीपैथी भी कहने लगे हैं।

हमारी संस्कृति में संकल्पशक्ति को बहुत महत्व दिया है। वेदों में ऐसे अनेक मन्त्र हैं, जिनमें प्रभु से प्रार्थना की गई है, कि मेरा मन शुभ संकल्पों वाला बन जाये अर्थात् किसी प्रकार का अशुभ संकल्प मेरे मन में न उठे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योग भारतीय संस्कृति के कण–कण में समाया हुआ है।

हिन्दू धर्म की शाखाभूत इतर सम्प्रदायों में भी योग का पर्याप्त प्रभाव देखने को मिलता है।

उदाहरणार्थ–जैन धर्म में मुँह पर कपड़ा रखकर चलने की प्रथा है। ऐसा वे अहिंसा धर्म का कट्टरता से पालन करने के उद्देश्य से किया करते हैं। अहिंसा अष्टांगयोग का एक महत्वपूर्ण अंग है।

बौद्ध धर्म में भी यम–नियमों को विशेष महत्व दिया गया है।

सिख सम्प्रदाय में भजन तथा चिन्तन दोनों क्रियाएँ योग सिद्धान्तों के अनुसार है। इन लोगों में गुरुदेव को साक्षात् ब्रह्म माना जाता है तथा उन्हीं का चिन्तन (ध्यान) इस सम्प्रदाय में प्रचलित है। सिख सम्प्रदाय में "सत श्री अकाल" कहने की प्रथा है, जिसका अर्थ है, कि वह अकाल पुरुष ही सत्य है। योग दर्शन में 'गुरू' शब्द को ईश्वर का वाचक बताया गया है तथा उसे अकाल पुरुष की संज्ञा दी गई है। जैसे–

सः पूर्वेषामपि गुरूः, कालेनानवच्छेदात्।

वह ब्रह्माण्ड नियन्ता परमेश्वर हिरण्य–गर्भ आदि पिछले सभी गुरुओं का भी गुरु है, क्योंकि वह काल की सीमा से परे है। अर्थात् किसी भी काल में और किसी भी स्थान में उसका अभाव नहीं होता।

सूफी मत में भी योग को महत्त्व दिया गया है। सन्त कबीर स्वयं एक उच्च कोटि के योगी थे। उनका साहित्य योग–सिद्धान्तों से भरा हुआ है। अन्य धर्मों में भी योग का प्रभाव न्यूनाधिक रूप से सर्वत्र विद्यमान है।

इस प्रकार यह किसी जाति विशेष एवं सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध नहीं रखता अपितु यह एक ऐसी पवित्र सार्वभौम विद्या है जिसे अपनाकर कोई भी व्यक्ति परम कल्याण का भागी बन सकता है।

❋ ❋ ❋

जीवन मुक्त का चित्त अचल होता है। अचल चित्त ही शुद्ध मन है। ज्ञानी का मन शुद्ध मन कहा जाता है। ब्रह्म, ज्ञानी के मन के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस प्रकार ब्रह्म शुद्ध मन ही हुआ। ब्रह्मलोक आत्म लोक ही है।

।। परमहंस बन जायेगा ।।

सूर्यकान्त पाण्डेय 'अशोक', ललितपुर

जब मिलेगी तुम को ईश–भक्ति,
नहीं होगी तुम पर धन शक्ति।
तुम सकल सबल बेबस होकर,
देखोगे अपनी ही कृति।।१।।

जो मिले तुम्हें वह छल लेगा,
नहीं कोई तुम्हें सम्बल देगा।
सुत, बन्धु, भार्या, मित्र तेरा,
तुझ को तुम से ही हर लेगा।।२।।

ये जो तेरा वैभव बल है,
उसका ही जग करे अभिनन्दन।
जब नहीं रहेगा यह सब कुछ,
तो यही करेगा जग क्रन्दन।।३।।

तुम ने सोचा तुम क्यों आये,
अपने घर से तुम क्या लाये।
जो दिया तुम्हें विश्वेश्वर ने,
उस को भी क्या तुम रख पाये।।४।।

फिर क्यों पीड़ा, क्यों ये क्रन्दन,
जब रख न पाये जीवन धन।
जो बोया था, सो काटो तुम,
ये तेरा ही है वन–उपवन।।५।।

लो सुबह ढली दोपहर हुयी।
दोपहर ढली अब साँझ गली।।
जागो तुम मर्त्य नहीं जग में,
तुमको सम्भव तुम महाबली।।६।।

तुम सुत उन योगेश्वर के हो
जिनका त्रिलोक में अभिनन्दन।
जिनकी एक कोर कृपा से सब,
जग के कट जाते हैं बन्धन।।७।।

अब तो उठ जाओ हे बन्धु
नहीं समय यहाँ कुछ सोच करो।
नित सुबह शाम ध्याओ उनको,
निज आत्म शक्ति का बोध करो।।८।।

नहीं काम करेगा व्यथित तुम्हें,
न क्रोध तुम्हें डस पायेगा।
मद की तो बात कहाँ लगती,
कोई मोह नमन भरमायेगा।।९।।

चहुँ ओर दिखेगा एक तत्व,
हर जीव तुम्हें, अपनायेगा।
इस परम तत्व परमालय में
तू परम हंस बन जायेगा।।१०।।

* * *

पूर्ण हैं गुरुदेव हमारे

ले० ब्र० बृजमोहन वाशिष्ठ, यामिनी आश्रम, अलीगढ़

योगध्यान समाधि दाता
प्रभु रामलाल के प्यारे
पण्डित वेष बनाकर आये
त्रिलोकी रखवारे
मनवांछित फल उसने पाया
जो चरण कमल उर धारे
श्री चन्द्रमोहन नाम है पावन
बृजमोहन प्राणाधारे
लाखों कष्ट हरे बहुजन के
अगणित पार उतारे
हे योगेश्वर हे परमेश्वर
सिद्ध गुफा के उजियारे

श्री गणाधिपतये नमः

रचयिता—द्वारका प्रसाद शर्मा

निम्नलिखित एकादश छन्दों की संरचना श्री गुरुदेव की महिमा में करने का मुझ अकिञ्चन द्वारा प्रयास किया गया है। यद्यपि मेरा तो यही विश्वास है कि उन्हीं के कृपाप्रसाद से लेखनी में गतिशीलता तथा शब्दों का निस्सरण अविराम अथवा धारा प्रवाह रूप में स्वतः ही उद्‌गीर्ण होता रहता है। परमाराध्य श्री गुरुदेव को शतशः प्रणाम के पश्चात् तथो छन्दो को सुधी पाठकवृन्द के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। उन पाठकों के निमित्त जो देववाणी से अभिज्ञ नहीं हैं, हिन्दी भाषानुवाद भी प्रत्येक श्लोक के नीचे लिख दिया गया है जिससे समस्त पाठक वृन्द लाभान्वित हो सकेंगे। यदि किंचिन्मात्र भी इन छन्दों से सुखानुभूति अथवा रसानुभूति उपलब्ध होगी तो उसे मैं प्रभु का प्रसाद ही मानूंगा। अन्यथा, प्रभुजी के गुणगान अथवा उनके प्रति स्तवन के निमित्त तो हम सब सम्भाव से नतमस्तक हैं ही। अस्तु।

(१) **भवे त्रितापैः परितप्यमानान्, निस्सार विषये सुखमीहमानान्।**
जनान् वीक्ष्य दुःखैः परिदह्यमानान्, योगे नियोक्तुं गुरुरागतो नः।।

इस संसार में त्रितापों (आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक) से संतप्तजनों के निमित्त, और ऐसे जनों के लिये जो विषयभोग में ही सुख की चेष्टायें करते रहते हैं तथा उन मनुष्यों के कल्याण के लिये जो विविध प्रकार के दुःखों से दग्ध हो रहे हैं, ऐसे ही दुःखित तथा पीड़ित जनसमुदाय के कल्याणार्थ ही उन्हें योग मार्ग में प्रवृत्त करने हेतु हमारे श्री सद्‌गुरुदेव का प्राकट्य हुआ है।

(२) **लीलावपुस्तु भगवानपि नैकवारं, युगे युगे भिन्न विभिन्न रूपे।**
आगत्य भुवि पापमपाचकार, जानाति कस्तस्य महामहिम्नः।।

युग—युगान्तरों में अनेकवार भगवान ने भी लीला शरीरों को धारण कर भिन्न—भिन्न रूपों में अवतरित होकर आवश्यकतानुसार इस धरातल में व्याप्त पापों व अनाचारों को अवश्य निवारित किया है। उस परमेश्वर की महान् महिमाओं को कौन जान सकता है।

(३) **स एव कर्त्ता स्वयमेव धर्त्ता, स्वयं च सृष्टिं हरते निजेच्छया।**
अतः स्वयं यः कर्त्ता च भर्त्ता, हर्त्ता स्वयं किं कथनीयमितरत्।।

वह (परमेश्वर) स्वयं करने वाले हैं, स्वयं ही वे सृष्टि के धारण करने वाले भी हैं और स्वेच्छानुकूल वे ही इस सृष्टि के संहारकर्त्ता भी हैं। क्योंकि वे स्वयं ही जब कर्त्ता हैं, स्वयं ही जब वे भरण—पोषण कर्त्ता हैं और स्वयं ही वे समग्र—सृष्टि के संहर्त्ता भी होते हैं तो इस विषय में इसके अतिरिक्त कहने के लिये शेष रह ही क्या जाता है। श्री मद्‌भगवद्‌गीता में भगवद् वचन भी हैं—

'मत्तः परतरं नान्यद किंचिदेस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। (गीता–अध्याय ७ का ७वाँ श्लोक)
उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेतिचाप्युक्तो, देहेऽस्मिन् पुरुषः परः।। (गीता, अ० १३ श्लोक २२)
अहंवैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। (गीता, अ० १५ श्लोक १४)
सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो, मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहम्।। (गीता अ० १५ श्लोक १५)
ईश्वरः सर्वभूतानां, हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्व भूतानि, यन्त्रारुढानि मायया। (गीता, अ० १८, श्लोक ६१)

(४) कृष्णः स्वयं षोडशभिः कलाभिः, धृत्वा शरीरं समलञ्चकार भूः।
किं किं कृतं तेन न योगवपुषा, आख्यायितो भागवते समग्रम्।।

भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं १६ कलाओं से परिपूर्ण हो इस पृथ्वी तल पर शरीर धारण किया था। अपने योगमय शरीर के द्वारा उन्होंने किन–किन अलौकिक कृत्यों को किया, इन सबका वर्णन श्रीमद्भागवत् महापुराण में उपलब्ध है।

(५) योगस्य महिमा भवितुं क ईशः, स एव जायेत् प्रविशेत स्वयं यः।
श्रेष्ठो नरः सोऽपि न तस्य पारं, गन्तुं क्षमः स्यात् कृपया बिन गुरोः।।

इस अद्भुत एवं प्रभावी योग की महिमा को बताने की सामर्थ्य है किसमें, इसको वही जान पाता है जो इसमें निरन्तर रममाण व अभ्यास परायण स्वयमेव रहे। यह कोई पठन–पाठन योग्य विषय न होकर स्वयं सतत् क्रियायोग व अनुभूति गम्य विषय है। आजकल तो योग को योगा कहकर हाथ–पैर को ऊँचा–नीचा करके शरीर संचालन मात्र ही इसकी व्याख्या हो गई है। योग के विषय में भगवान पतञ्जलि महाराज की प्रथम व द्वितीय सूत्रों की संरचना कितनी विशद् व व्यापक है इसका मनन व अनुसरण करने की आज के युग में भला किसे फुरसत है और करना तो बड़ी दूर की बात हो जाती है। वे कहते हैं–**योगश्चित्तवृत्ति निरोधः–तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् –इति।**

उत्तम आचरणशील श्रेष्ठ व्यक्ति भी इसके पार को बिना सद्गुरुदेव की कृपा के नहीं पा सकता। सद्गुरुदेव ही इस योग (आत्म–परमात्म मिलन) को कृपा पूर्वक बताने में समर्थ हैं।

(६) अस्मद् गुरुवां परम हि श्रद्धा, यथा गुरौ तावतीशेऽपि कृष्णे।
अतस्तेस्य महिमा सुमहानभूदिह, कः पारयेत्तस्य परं हि पारम्।।

जैसे कि आप्त वचन हैं

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

जिस किसी भी व्यक्ति की ईश्वर में परम भक्ति अथवा श्रद्धा हुआ करती है, वैसी ही अपने गुरुदेव में भी यदि वर्तमान रहा करती है तब ही उस व्यक्ति के निमित्त महापुरुष या महात्मा जन ज्ञातव्य अर्थों को उजागर कर दिया करते हैं।

हमारे सद्गुरुदेव की भगवान श्री कृष्ण के प्रति अनन्य श्रद्धा रही और अपने सद्गुरुदेव (प्रभु श्री रामलाल जी महाराज) के चरणारविन्द के तो चञ्चरीक समान ही अनुराग व श्रद्धा से प्रतिक्षण परिपूर्ण रहा करते थे। उनकी इस अनन्य निष्ठा व श्रद्धा का दशांश भी यदि हम अनुपालन कर लेंगे तो निश्चय ही हमें भी यथार्थ बोध–स्वरूपानुभूति, विलम्ब से ही सही, हो सकती है। हमारे सद्गुरुदेव तो श्रद्धा व करुणा के मूर्तिमान स्वरूप थे, हम उन के द्वारा निर्दिष्ट पथ का अनुसरण ही करते रहें तो हमारा जीवन कृतकृत्य व कल्याणमय होगा इसमें लेशमात्र संशय नहीं है।

(७) **यावत् यदा याति स्मृतिं गुरुर्नः, सौम्येक्षणः स्मितमुखः श्रियमादधानः।**
लला–लली मधुरया गिरया भणन् सः, कण्ठः सगद्गद् इवाश्रुभरे च नेत्रे।।

श्री सद्गुरुदेव की हमें जब भी याद आती है तो तत्क्षण हमें उनकी सौम्य दृष्टि और सदा मुस्कराता मुखमण्डल और आभा व शोभा से समन्वित उनकी देह सन्मुख उपस्थित हो जाया करती है। जब–जब भी उनके सान्निध्य को सुयोग, व सौभाग्य रहा है तो उनका मधुर शब्दोच्चार 'लला' या 'लली' कहकर सुनना या कहना अब भी हमें स्मृति में आते ही कण्ठ को अवरुद्ध सा कर दिया करता है और दोनों नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते हैं। यह थी उनकी अपने शिष्यों के प्रति स्नेह की अतिशयता जो हम शिष्यवृन्द को सदा–सर्वदा मन्त्रमुग्ध सी कर दिया करती है।

(८) **क्षणं क्षणं काञ्चनसन्निभं वपुः तप्तं सदा योगमयेन वह्निना।**
लब्धं समस्तं व्यतरत् जनेभ्यः, शिष्येभ्य एव सकलेभ्य अहो महान् गुरुः।

हमारे सद्गुरुदेव ने अपने स्वर्ण सदृश शरीर को क्षण–प्रतिक्षण योगाग्नि में खूब तपाया है। उन्होंने इस योग पथ में जो जो महान् उपलब्धियाँ प्राप्त की, उनको जन–जन में बाँटा और अपने समस्त शिष्य समुदाय में भी खूब वितरित किया। वास्तव में, हमारे गुरुदेव महान् हैं।

(९) **मयापि दृष्टा च तथाऽनुभूता कृपा कृता, या फलिता गिरा च।**
कृपा मत्कृता नैव गुरोः कृपेषा, हलवा गुरोः चम्मचोऽकिंचनोऽहम्।।

यह तो मैंने भी स्वयं देखा है तथा अनुभव किया है कि हमारे सद्गुरुदेव कृपा की वर्षा करते रहते थे। क्योंकि वे समर्थ गुरु थे। और जब भी कृतज्ञ शिष्य अथवा साधकजन वृन्द उनकी कृपा द्वारा कार्यसिद्धि पर उनके प्रति श्रद्धा सुमन ले नतशिर हो प्रस्तुत होते और उनकी कृपा का बखान करने लगते तो वे करुणार्णव विनयमूर्ति यही प्रायः कह देते कि भई लला हलवा तो वे ही आनन्दकन्द प्रभुजी हैं मैं तो मात्र एक चम्मच की तरह हूँ जो उनके प्रसाद को वितरित

भर कर रहा हूँ। देखिये, विचार करिये, सब प्रकार की सामर्थ्य से भरपूर होने पर अहंकृति की भावना से अस्पृष्ट, प्रशंसा आदि से परहेज करने वाले व्यक्तित्व क्या सुलभ हैं। ऐसे सद्गुरुदेव के सान्निध्य के सन्निधि प्राप्त कर हम सब कृतार्थ एवं धन्य हैं। हमें उनके किसी एक सद्गुण का तो अवश्य अनुकरण करना चाहिये। तभी सच्चे अर्थों में हम उनके शिष्यत्व की सुपात्रता की श्रेणी में आ पाते हैं।

(१०) **दत्तं प्रदत्तं गुरुणा न किं किं, कल्पद्रुमः कामधेनुः स एव।**
मोघा गिरा नैव बभूव दृष्टा, ऋतम्भरा, भाजमाना सदासीत्।।

हमें सद्गुरु देव ने क्या–क्या नहीं बख्शा है। वे ही कल्पवृक्ष हैं और वे ही काम धेनु हैं। उनके मुखारविन्द से निस्सृता वाणी कभी विफला होती नहीं पाई है। उनकी वाणी ऋतम्भरा सदैव रही है। वे पातञ्जल सूत्रों के एक–एक सूत्र के जीवन व मुत्तिमान् स्वरूप थे ही।

(११) **किं नास्ति सम्प्राप्य महान्तमेतं, गुरुं स्वमहिमानमदर्शयन्तम्।**
कीर्तिर्गुरुणां प्रसरेत् दिशस्सु, शिष्या य-सर्वाय सुकर्यमेतत्।।

ऐसे महान गुरु को प्राप्त कर जिन्होंने अपनी महामहिमा को कभी उद्घोषित अथवा प्रदर्शित किया ही नहीं, तो क्या ऐसे सद्गुरुदेव की कीर्ति व यशस का समस्त दिशाओं में प्रचुर प्रसार हो, यही हम सब शिष्यों का सुन्दर व सुपुनीत कर्तव्य है। हम इस ओर भी प्रवृत्त हों, यही हमारा अभीष्ट लक्ष्य होना चाहिये। इति शम्।

❊ ❊ ❊

> ***मन की विश्राम-स्थली हृदय है। हृदय आत्मा का केन्द्र है। हृदय मानसिक केन्द्र का प्रतीक है। शारीरिक केन्द्र का नहीं।***

ब्रज-महिमा

लेखक–राजपति दुबे बालेन्दु, इटावा

(१) मधुरी मुस्कान विलोकि कै स्याम की
नैन हमारे निछावरे है गये।
निसि बासर बतित जागत ही
नित बाट निहारत पथिर है गये
अब यूकि गई सिगरे जग को
दृग स्याम पै रीझि रिझावरे है गये।
हम साँची कहै जननी जसुदा
तेरो सांवरो देखिकै बाबरे हे गये।

(२) उसकी चली यमुना तट पै
बृजराज चरावत धेनु वृन्दावन
बृज गोपिन बीच बिहार करै,
रसराज बजावत बेनु वृन्दावन
स्याम कौ नेक निहारत ही
मिलि जात सबै सुख चैनु वृन्दावन
परब्रह्म जहाँ अवतार धरै,
तिहुँ लोक तै पावन रेनु वृन्दावन।

नीति के मुक्तक

(१) जो खिला है फूल पतझर की नजर हो जायगा।
क्या पता किस मोड़ पर पूरा सफर हो जायगा।
ठोकरें देकर जिये वे ठोकरे खाकर मरे।
जिसने पोंछा आँसुओं को वह अमर हो जायगा।

(२) जो जले थे दीप बनकर वे दमकते ही रहे।
पा गये मंजिल वही जो पाँव चलते ही रहे।
पा गये वे ही किनारा जो लड़े मझधार सों।
और हम लाचार होकर हाथ मलते ही रहे।

(३) आज तू इठला रहा कल एक दिन वो आयगा।
हाट उठ जायेगी बराबर तू हो जायगा।
मति! दो गज कफन भी यों ही पड़ा रह जायगा।
सिर्फ यहीं का बिछौना काम तेरे आयेगा।

श्री महाप्रभु जी के चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह, बलिया

ऐ योगी सिद्ध गुफा के तेरी महिमा अपरम्पार
तू जग का पालन हार गुरुजी आ जाओ इकबार।
सब नाते–रिस्ते तुमसे हैं, बस तुम हो जग में दाता
तुझको छोड़ कहाँ जाऊँ मैं, तुम हो भाग्य विधाता;
चरण कमल में मस्तक टीके दर्शन दो सरकार
तू जग का पालन हार।

कृपा करके ऐ त्रिपुरारी, सुधा प्यार का बाँटो,
योग की वर्षा करने वाले, बंधन भव का काटो;
अमृत की गंगा छूने को है भगीरथ तैयार
तू जग का पालन हार।

सिद्ध गुफा के मन्दिर की वो, दिव्य ज्योति जलाओ
मन कमल मेरा ये खाली है आ आसन आप लगाओ,
पलक ओट से मोती बोले, जाऊँ चरणों पे बलिहार
तू जग का पालन हार।

कबसे द्वार खड़ा राजेश, योग की भिक्षा लेने को
भर दो झोली अवढर दानी, सत्संग की शिक्षा देने को
शरण में अपनी ले लो मुझको, मेरी अरज करो स्वीकार
तू जग का पालन हार।
गुरुजी आ जाओ इकबार।

ब्राह्मण महासभा बालाजी पुरम, आगरा,

क्रम	नाम	पता	दूरभाष
1.	पं.भुवनेश चन्द्र मिश्र	135-136 बालाजीपुरम्	2210021
2.	पं. शैलेन्द्र शर्मा	शम्भू नगर	941226359
3.	पं. श्याम बाबू शर्मा	170 बालाजीपुरम्	2210182
4.	पं. पूरन किशन सदानिधी	शिव विहार	
5.	पं. श्वेत बन्धु द्विवेदी	बालाजीपुरम्	
6.	पं. अम्बिका चरण पचौरी	167 बालाजीपुरम्	2210167
7.	पं. अनिल दुबे	180 बालाजीपुरम्	
8.	पं. अरुण उपाध्याय	179 बालाजीपुरम्	
9.	पं. डा. ब्रजराज शर्मा	बालाजीपुरम्	
10.	पं.राधामोहन शर्मा	बी. 17 बालाजीपुरम्	2216276
11.	पं. कृष्ण कुमार शर्मा	सी-6 बालाजीपुरम्	3117075
12.	पं. योगेश कुमार उपाध्याय	रामसखा नगर	2213992
13.	पं. रमेश चन्द्र शर्मा (दूरा वाले)	सी-बालाजीपुरम्	2211861
14.	पं. के. के. भारद्वाज	सी-बालाजीपुरम्	9417330859
15.	पं. अनोखेलाल उपाध्याय	बालाजीपुरम्	
16.	पं. जयप्रकाश उपाध्याय	बालाजीपुरम्	
17.	पं. भूखराज [illegible]	डी-1 बालाजीपुरम्	2213418
18.	पं. अशोक कुमार दुबे	बालाजीपुरम्	2210277
19.	पं. रघुवीर सिंह दीक्षित	178-बालाजीपुरम्	2212862
20.	पं. हरी किशोर शर्मा	सी- 12 बालाजीपुरम्	2210022
21.	पं. रामजीलाल शर्मा	डी-65 बालाजीपुरम्	2214432
22.	पं. विनोद कुमार समाधिया	183-बालाजीपुरम्	
23.	पं. रामेश्वर प्रसाद शर्मा	137-बालाजीपुरम्	2217788
24.	पं. महेशचन्द्र शर्मा	186-बालाजीपुरम्	2210210
25.	पं. विनोद कुमार दीक्षित	187-बालाजीपुरम्	2214284
26.	पं. रमेश चन्द्र शर्मा	137 ए-बालाजीपुरम्	2218021, 98371059[illegible]
27.	पं. राजकुमार रावत	132-बालाजीपुरम्	
28.	पं. कृष्ण कुमार पाण्डे	97-बालाजीपुरम्	2211015
29.	पं. मुकेश तिवारी	121-बालाजीपुरम्	
30.	पं. श्री प्रकाश मिश्र	104-बालाजीपुरम्	
31.	पं. ललित प्रसाद उपाध्याय	117-बालाजीपुरम	2214339
32.	पं. शिवराम शर्मा	सी-5 शम्भू नगर	2212068
33.	पं. हरिमोहन दीक्षित	11-जोरावर नगर	
34.	पं. श्यामशंकर गौतम	17-जोरावर नगर	2211728
35.	पं. सुरेश चन्द्र पचौरी	12-जोरावर नगर	2216279
36.	पं. बृजेन्द्र नाथ पाठक	सी-17 बालाजीपुरम्	2216828
37.	पं. राजनाथ तिवारी	सी-13 बालाजीपुरम्	2216555
38.	पं. गंगाधर शर्मा	सी-4 बालाजीपुरम्	
39.	पं. उत्तमचन्द्र दीक्षित	ए-77 बालाजीपुरम्	2210988, 9412254297
40.	पं. सुरेश चन्द्र उपाध्याय	154-जवाहर पुरम् फेस-1	2211846
41.	पं. अजय शर्मा	159-जवाहर पुरम् फेस-1	
42.	पं. छड़ैती प्रसाद गौतम	बी-35 बालाजीपुरम	2214146
43.	पं. के.एल. शर्मा	बी-31 बालाजीपुरम्	2212637
44.	पं. देवकी नन्दन शर्मा	बी-75 बालाजीपुरम्	
45.	पं. रामशरन सारस्वत	ए-19 बालाजीपुरम्	
46.	पं. सोमेश्वर दीक्षित	सी-12 बालाजीपुरम्	2210100
47.	पं. धर्मसिंह दीक्षित	प्रेम नगर बालाजीपुरम्	2217259
48.	पं. आर.डी. मिश्रा	ए-26 सुभाष नगर बालाजीपुरम्	2217338
49.	पं. मुकेश कौशिक	ए-40 सुभाष नगर	2217815
50.	पं. डा. राजवीर शर्मा	ए-21 सुभाष नगर	2212795
51.	पं. भानुप्रताप भारद्वाज	ए-27 सुभाष नगर	2210265
52.	पं. [illegible] शर्मा	ए-16 सुभाष नगर	[illegible]

53. पं. नारायण स्वरूप सारस्वत	ए-11 बालाजीपुरम्	
54. पं. आर.एन. दीक्षित	ए-9 बालाजीपुरम्	2214714
55. पं. देवेन्द्र रावत	ए-18 बालाजीपुरम्	2210152
56. पं. लक्ष्मीनारायण शर्मा	ए-14 बालाजीपुरम्	2216905
57. पं. सूर्यकांत पचौरी	ए-23 बालाजीपुरम्	
58. पं. जगदीश प्रसाद शर्मा	ए-30 बालाजीपुरम्	2211263, 3104916
59. पं. सत्यप्रकाश सारस्वत	बी-61 बालाजीपुरम्	
60. पं. नारायण दत्त झा	सी-9 बालाजीपुरम्	2217030
61. पं. भगवान सिंह शर्मा	ए-25 बालाजीपुरम्	2218219
62. पं. डा. डी.के शर्मा	5-बी केशर विहार	
63. पं. शिव नारायण शर्मा	डी-135 बालाजीपुरम्	
64. पं. योगेन्द्र कुमार दीक्षित	डी-14 बालाजीपुरम्	
65. पं. श्री प्रकाश चतुर्वेदी	बी-74 बालाजीपुरम्	2214633
66. पं. रामगोविन्द मिश्र	सी-2 बालाजीपुरम्	2215930
67. पं. रमाशरण दीक्षित	शम्भूनगर	
68. पं. चन्द्र भान शर्मा	206-बालाजीपुरम्	
69. पं. ओम प्रकाश सारस्वत	सी-3 बालाजीपुरम्	
70. पं. सन्तोष रावत	डी-84 बालाजीपुरम्	
71. पं. रमेश चन्द्र दीक्षित	डी-100 बालाजीपुरम्	
72. पं. राजेश कुमार उपाध्याय	केशर विहार	
73. पं. शिवनाथ प्रसाद शर्मा	42-जौरावर नगर	
74. पं. शरद कुमार शर्मा	बालाजीपुरम्	
75. पं. इन्द्रदेव शर्मा	बी-19 बालाजीपुरम्	
76. पं. के.एस. शर्मा	ए-15 बालाजीपुरम्	
77. पं. संजय सारस्वत	41-अवध पुरी	2216773
78. पं. संजय कुमार कटारा	डी-64 बालाजीपुरम्	2214932
79. पं. विनय कुमार शर्मा	डी-2 बालाजीपुरम्	2216765
80. पं. जगमोहन शर्मा	बी-12 बालाजीपुरम्	
81. पं. सुमन कुमार शर्मा	बी-26 बालाजीपुरम्	2211952
82. पं. शिवकुमार दीक्षित	ए-7 बालाजीपुरम्	
83. पं. श्रीकृष्ण सारस्वत	रामनगर	2215317
84. पं. विनोद कुमार शर्मा	रामनगर	2210318, 9897203051
85. पं. सतीश चन्द्र शुक्ला	रामनगर	2210318 पी.पी.
86. पं. ओमप्रकाश शर्मा	कृष्णा नगर	2212567
87. पं. रामबरोसी लाल उपाध्याय	21 रामपुरी कॉलोनी	2216401
88. पं. पुरुषोत्तम शर्मा	पंडित जी स्वीट कोर्नर	
89. पं. मनोज भारद्वाज	डी-90 बालाजीपुरम्	
90. पं. सुरेश चन्द्र शर्मा	156 बालाजीपुरम्	
91. पं. श्री सत्यदेव शर्मा	बी. 14 बालाजीपुरम्	
92. पं. केशवदेव चतुर्वेदी	बी-19 बालाजीपुरम्	
93. पं. भगवान सिंह चतुर्वेदी	सी फुटा रोड शाहगंज	
94. पं. बसन्त कुमार शर्मा	176 बालाजीपुरम्	
95. पं. शरद शर्मा	बालाजीपुरम्	
96. पं. मानिक चन्द्र शर्मा	बी-65 बालाजीपुरम्	
97. पं. ज्योतिष सिंह उपाध्याय	बी-71 बालाजीपुरम्	
98. पं प्रेमचन्द्र शर्मा	186 बालाजीपुरम्	
99. पं. रामकिशन शर्मा	78 शंकर पुरी	2211678
100. पं. पुरुषोत्तम शर्मा	सी. फुटा रोड बालाजीपुरम्	2213323

सम्पर्क-पं. रघुवीर "सिंह" दीक्षित

मंत्री-प्रकाश चन्द्र शर्मा

श्रीमती सरिता भारद्वाज, दिल्ली

जय जयति श्री चन्द्रमोहन,
जयति जय योगेश्वरम्।
जय सिद्धियों के सिद्ध जय,
जय सिद्धों के सिद्धेश्वरम्।
योगीश जय योगेश जय,
जय जयति जय देवेश्वरम्।
जय जयति ज्योति योग की जय,
जयति जय सर्वेश्वरम्।
जय जय प्रणव के रूप जय जय,
जयति जय परमेश्वरम्।
जय पाप नाशक ताप हारक,
जयति जय दीनेश्वरम्।

जय जयति आनन्द राशि गुरुवर,
जयति मोद विवर्द्धनम्।
जय जयति अविनाशी अलौकिक,
जय अगम अखिलेश्वरम्।
जय–जय शिरोमणि योग के जय,
योगियों के ईश्वरम्।
जय जयति आगम, निगम जय,
जयति जय देव सुरेश्वरम्।
जय जायति प्रभु के प्राण बल्लभ,
रूप ही प्रभु के प्रभो।
तुमको करूँ मैं नमन कोटिक,
थाम लो अब तो प्रभो।
तार दो अब तो प्रभो।।

* * *

गुरुदेव सवांई वाले

अशोक शुक्ला, कानपुर

निज चरणों में मुझे रख लीजे, गुरुदेव सवांई वाले,
मेरी अन्तर ज्योति जला दीजे, गुरुदेव सवांई वाले।

माया ने मुझको घेरा है, न कोई कहे तू मेरा है।
मुझे अपना आप बना जावो, गुरुदेव सवांई वाले। निज......

चरणों में तेरे अमृत बरसे, फिर भक्त तेरे क्यों करें तरसें
खुद अपने हाथ पिला जावो गुरुदेव सवांई वाले।.....निज

मन मोह की मदिरा पीता है नित भव बन्धन में जीता है।
इस जाल से नाथ छुड़ा जावो गुरुदेव सवांई वाले।....निज

इक तेरी कृपा की आस लिए, नयनों में दरश की प्यास लिए
मुस्कान मधुर लिए आ जावो, गुरुदेव सवांई वाले।.........निज

योगसिद्ध आश्रम मण्डी ने लिया सद्‌गुरूदेव के संकल्प का मूर्तरूप

प्रेषक—हेमराज चोपड़ा

मण्डी नगर हिमाचल प्रदेश के मध्य भाग में स्थित पुरातन ऐतिहासिक नगर है जो देश की राजधानी दिल्ली से हवाई मार्ग तथा राष्ट्रीय राजमार्ग द्वारा जुड़ा हुआ है। इसे मंदिरों का शहर 'छोटी काशी' के नाम से भी स्थानीय लोगों द्वारा जाना जाता है। व्यास नदी के तीर पर बसे इस नगर का सम्बन्ध ऋषि–मुनियों के साथ स्वतः ही रहा है। महर्षि व्यास के नाम से विख्यात 'व्यास कुण्ड' इस नदी का उद्‌गम स्थान है और वहाँ से निकलकर वशिष्ट ऋषि के स्थान का स्पर्श करती हुई यह मण्डी पहुँचती है जहाँ मांडव ऋषि ने वर्षों तपस्या की थी तथा जिनके नाम पर इस स्थान का नाम मण्डी पड़ा। शायद नगर की इसी पृष्टभूमि के विषय में अपने योगबल से जानकर योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने अपने सत्संगी बच्चों के साथ १६३४–३५ में यहाँ पदार्पण किया। जब वे अमृतसर से पठानकोट होते हुए मण्डी नगर व वहाँ से लोमश ऋषि के स्थान व सभी धर्मों व वर्गों में विख्यात झील रिवालसर गए थे तथा कांगड़ा की पर्वत श्रृंखलाओं में भ्रमण किया था।

कहते हैं कि पूर्ण योगी जिस स्थान को एक बार देख लेते हैं वह स्थान पवित्र हो जाता है व समय आने पर वहाँ योग की अजस्र धारा बहने लगती है। मण्डी नगर के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ। कालान्तर में इस स्थान में कुछ भक्तों के हृदय में योग के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई तथा इस क्षेत्र में सर्वप्रथम बड़ाही ग्राम (सरकाघाट) वासी श्री कृष्णचन्द्र शर्मा जी का सम्पर्क योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से चण्डीगढ़ में हुआ और उनसे योग दीक्षा ग्रहण की। तभी से उनके मन में यह भावना बन गई कि इस योगामृत का पान वे अधिक से अधिक व्यक्तियों को करवाएंगे। सर्वप्रथम इन्होंने अपने सहयोगी श्री हरिसिंह जी को प्रभुचरणों में योग दीक्षा प्रदान करवाई। अब श्री कृष्णचन्द्र शर्मा जी को अपनी उद्‌देश्य पूर्ति हेतु एक योग्य सहयोगी मिल गया और योग पताका फहराने का इनका प्रयास धीरे–धीरे गति पकड़ने लगा। वर्ष १६७१ में इन्होंने सद्‌गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन महाराज जी से मण्डी में योग कार्यक्रम करने की प्रार्थना की जिसे उनहोंने स्वीकार कर लिया। लेकिन मण्डी में सर्वप्रथम कार्यक्रम अगस्त १६७६ में ही करवाने की गुरूदेव से आज्ञा मिली। अब मण्डी में गुरूदेव से योग कार्यक्रम की आज्ञा तो मिल गई लेकिन इसका निष्पादन किस प्रकार से हो, इसकी चिन्ता इन दोनों गुरू भाइयों को सताने लगी। यह पहला ही कार्यक्रम था और योगी सद्‌गुरूदेव का सम्मान किस प्रकार किया जाता है, यह इन्हें भलीभाँति विदित न था। इन्होंने गुरूदेव से संवाई धाम से ही किसी गुरू भाई/ब्रह्मचारी को मण्डी भेजने की प्रार्थना की। लेकिन वहाँ कई ब्रह्मचारी थे उनमें से किसे

भेजा जाए, इस पर विचार किया गया व अन्ततः श्री गुरुदेव की चरण शरण में सुदूर हिमालय के आंचल से आए ब्रह्मचारी श्री दासलाल जी के नाम पर सहमति बनी और श्री गुरुदेव महाराज जी ने कुछ सोचकर उन्हें इस कार्यक्रम के संचालन हेतु प्रोग्राम कुछ दिन पूर्व ही मण्डी भेज दिया। उनके सहयोग और मार्गदर्शन में यह कार्यक्रम अति उत्तम बन पड़ा और योग क्रियाएँ करते हुए अनायास ही लोगों की ध्यान स्थितियाँ बनती गई और पंडाल में एक साथ कई लोगों को ध्यानावस्था में रत देखा जा सकता था।

१ अगस्त १६७६ में यह मण्डी का पहला योग प्रचार कार्यक्रम था। इसके पश्चात गुरुदेव महाराज की करुण कृपा इस नगरी पर निरन्तर बनी रही और लगभग हर दो तीन साल के बाद यहाँ उनका कार्यक्रम होता रहा अर्थात् १६७६ के बाद १६७६ तथा १६८३, १६८६ व १६८६ में योग कार्यक्रम यहाँ सफलता पूर्वक सम्पन्न हुए। इन कार्यक्रमों की विशेषता यह रही कि इनमें भारत के विभिन्न भागों से उन करुणा करण के बच्चे यहाँ आकर उनके चरणों की रज प्राप्त करते थे। इन कार्यक्रमों का संचालन सर्व श्री कृष्णचन्द्र शर्मा जिन्हें हिमाचल के गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन महाराज द्वारा सर्वप्रथम दीक्षा प्राप्त हुई थी, व श्री हरिसिंह द्वारा होता रहा, जो प्रभुजी के अत्यन्त लाडले बच्चे हैं।

गुरुदेव महाराज जी का १६८६ का कार्यक्रम संयोगवश मण्डी में उनका अंतिम योग प्रचार कार्यक्रम था। वह पुरानी मण्डी में हमारी अत्यन्त आदरणीय गुरु बहिन श्रीमती विद्या कौशल जी के निवास स्थान पर सम्पन्न हुआ। (यह वही विद्या कौशल हैं जिन्होंने अपने भाई श्री महेश प्रसाद शर्मा के साथ मिलकर लाखों रु. के मूल्य की अपनी पैतृक भूमि योग सिद्ध आश्रम भवन के लिए दान में दे दी थी) इस कार्यक्रम के दौरान श्री गुरुदेव महाराज को वह भूखण्ड भी दिखाया गया। कृपा निधान ने स्वयं सड़क से नीचे उतर कर कृपापूर्वक इस भूखण्ड को अपनी चरण रज से पवित्र किया और आज्ञा दी कि यह जगह उत्तम है यहाँ आश्रम का निर्माण करो। अब हम यहीं रहकर योग प्रचार करेंगे। यही नहीं उन्होंने स्वयं के करकमलों द्वारा आश्रम का एक खाका तैयार किया जो यहाँ आश्रम में सम्भाल कर रखा गया है।

उनका आदेश पाकर उनके सभी बालक उत्साह से आश्रम निर्माण कार्य में जुट गए। अक्टूबर १६८६ के उनके चण्डीगढ़ योग प्रचार कार्यक्रम के दौरान विद्या बहिन जी व अन्य गुरु भाई बहिन मण्डी से चण्डीगढ़ गए थे उन्होंने निवेदन किया कि महाराज जी, मण्डी में आश्रम का निर्माण कार्य चल रहा है आप इसके लिए आशीर्वाद दें कि कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो जाए। कृपानिधान ने मुस्कुराते हुए आशीर्वाद दिया और कहा कि कार्य तो मैं स्वयं करवा रहा हूँ ये देखो ईंटें ढो–ढो कर मेरे कन्धे भी थक गए हैं सभी उनके इस स्पष्ट विवेचन को सुनकर भाव विह्वल हो गए। और निःसन्देह उन्होंने इस आश्रम का सारा कार्य स्वयं ही कराया व निभाया है। इसके पीछे सभी गुरु भाई बहिनों की सद्गुरु चरणों में अटूट श्रद्धा व उनका आशीर्वाद ही था जो कार्य कर रहा था। इसी बीच उनका मण्डी के एक गुरु भाई हेमराज चोपड़ा जी के नाम

जून १९६० का लिखा एक पत्र भी प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने पुनः दोहराया कि मण्डी आश्रम का कार्य उत्साह से पूरा करें तथा स्पष्ट शब्दों में लिखा कि "अब हम मण्डी में ही रहकर योग प्रचार करेंगे"। यह पत्र भी संभालकर मण्डी आश्रम में रखा गया है। आश्रम का निर्माण कार्य श्री प्रकाश चन्द्र गुप्ता सहायक अभियन्ता की देखरेख में हुआ जिनका देहावसान सितम्बर २००२ को हो गया।

डा० दासलाल जी ब्रह्मचारी के तत्वावधान में योग सिद्ध आश्रम मण्डी में ११ से १८ अक्टूबर २००३ तक श्री मद्भागवत पुराण ज्ञानयज्ञ एवं योग शिविर का आयोजन किया गया।

१० अक्टूबर २००३ से ही आश्रम में भारत के विभिन्न भागों से गुरु भाई बहिनों का आगमन प्रारम्भ हो गया था। आचार्य डा० दासलाल जी सायं ७ बजे के लगभग अपने कई शिष्यों सहित आश्रम में पधारे। उन के साथ हरदोई के श्री पुत्तानसिंह व साथी, गंगापुर सिटी से श्री भरतसिंह, रामबाबू, गोविन्द आदि, घरोंडा से १०–१२ व्यक्ति तथा हिमाचल के विभिन्न भागों से लोग इस योग शिविर में भाग लेने पहुँचे।

११ अक्टूबर २००३ से कार्यक्रम का शुभारम्भ नित्यप्रति पाँच बजे प्रातः श्री महाप्रभु जी की आरती पूजन से प्रारम्भ होता था उसके पश्चात् ६ बजे तक गीता व गुरु गीता का पाठ आचार्य जी द्वारा समवेत स्वरों में करवाया जाता था साथ ही सम्बन्धित पाठ की सरल समीक्षा भी करते थे। और पाठ से सम्बन्धित प्रश्नों के योग सिद्धान्तों पर आधारित उत्तर द्वारा साधकों की जिज्ञासा भी शांत करते थे। गीता पाठ के उपरान्त ६ से ७ बजे तक ध्यान कक्षा लगाई जाती थी इस दौरान कई साधकों को भस्त्रिका प्राणायाम प्रारम्भ हो जाता था व कई–कई बहनों को ८–१० घण्टे की ध्यान समाधि लग जाती थी। वह बड़ा ही अनुपम दृश्य होता था जब ऐसे साधक ध्यान में ही कई प्रकार के कठिन–कठिन आसन सहज ही कर लेते थे और निरन्तर योग ध्यान में रत रहते थे। विशाल हाल ऐसे ध्यानाभ्यासी साधकों से भर जाता था। इसके उपरान्त ७ से ८ बजे तक जीवन तत्व साधन एवं विभिन्न यौगिक आसन करवाएँ जाते थे। इसमें अधिकाधिक लोग आबाल वृद्ध सभी भाग लेते थे। ऐसा भी देखने में आया कि जीवन तत्व साधन करते ही किसी का भस्त्रिका प्राणायाम शुरू हो गया और उसी स्थिति में बद्ध नेत्रों से ही अत्यन्त वेग से जीवन तत्व साधन करते देखे गए। कितने ही लोगों को जल नेती, सूत नेती, वस्ति नौली इत्यादि क्रियाएँ कराई गईं और इन क्रियाओं के लाभ समझाए गए। ऐसा प्रतीत होता था मानो सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज स्वयं विराजमान होकर संचालन कर रहे हों और पूर्ववत् कार्यक्रमों की तरह ही वे हमारे बीच में है। गुरुदेव की शक्तिपात परम्परा की अजस्र धारा स्पष्ट देखी जा सकती थी।

१८ अक्टूबर २००३ को हवन यज्ञ के पश्चात् इस भागवत् पुराण एवं योग शिविर का विधिपूर्वक समापन हुआ।

❊ ❊ ❊

योगी के लिए जरूरी है सात्विक आहार

...गुण प्रधान मनुष्यों का आहार

...यु वृद्धि करने वाले, सत्व वृद्धि करने वाले, बल को बढ़ाने वाले आरोग्यता देने वाले, ... और प्रेम को बढ़ाने वाले रसीले, चिकने, जिनकी शक्ति कायम रहने वाली है, जो हृदय ... पुष्टि करने वाले हैं अर्थात् जो स्वभाव से ही रुचिकर हैं ऐसे आहार सात्विक कहलाते हैं। और वह सतोगुण प्रधान व्यक्तियों को ही अच्छे लगते हैं। गोघृत, दूध, मक्खन मलाई आदि पेय पदार्थ, गेहूँ, चना, जौ या रसीले सेब, सन्तरा, अंजीर और मौसमी आदि फल, घीया बथुआ, तोरई, चौलाई, पालक, मैंथी आदि पत्ती के साग और पवित्र कन्दमूलों का आहार ये सब सात्विक आहार हैं। इनके सेवन करने से मन में सतोगुण का ही विकास होगा। बुद्धि पवित्र रहेगी और सतोगुण प्रधान को स्वभावतः यही गुण प्यारे भी लगेंगे।

रजोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार–

...कड़वे–कषैले आदि, खट्टे–आम की खटाई आदि, ज्यादा नमक वाले, अत्यन्त गरम, ...में बहुत अधिक मिर्च पड़ी हो और रूखे व खुश्क तेज मिर्चों के पकौड़े आदि और इसी ...के जो शरीर में दर्द देने वाले, गर्मी पैदा करने वाले दुःख और चिन्ता को पैदा करने वाले ... रजोगुण को बढ़ाने वाले होते हैं जो रजोगुण प्रधान व्यक्ति हैं उन्हें सब भोजन प्रिय होते ...

...गुण प्रधान मनुष्यों का आहार–

...रस रहित, दुर्गन्ध युक्त, बासी, उच्छिष्ट एवं रस रहित भोजन तमोगुण को बढ़ाने वाला है। और तामसी व्यक्ति को ही प्रिय होता है। जैसे पहले दिन के बने हुये जिन पर से रात उतर चुकी है और गतरस हो जाते हैं, ऐसे भोजन तम प्रधान होते हैं।

जितने जिस–जिस स्वभाव के व्यक्ति संसार में रहते हैं उनको उसी प्रकार का खान–पान रहन–सहन प्रिय हुआ करता है। योगी के लिए सात्विक बन जाना बहुत आवश्यक है। जब तक उसके अन्दर सतोगुण की वृद्धि नहीं होती तब तक वह परम लक्ष्य को पाने में असमर्थ रहेगा। इसके साथ–साथ एक बात का और ख्याल रखना आवश्यक है कि मन की शक्ति सब आहारों में परिवर्तन कर देती है। दूध घी फल कन्दमूल साग सब्जी ये सब भोजन सात्विक हैं। किन्तु कोई पाप कमाई करने वाला ऐसे आहार खिलाता है, तो उनमें उनके मन का असर रहा करता है। सुनते हैं ननकाना साहब में एक बार गुरु नानक देव के सामने एक नवाब की ओर से घृत पक्व सुमधुर भोजन आया। दो सूखी रोटी एक किसान भी लेकर आया। गुरुनानक देव ने वह रोटियाँ स्वीकार कर ली किन्तु नवाब का भोजन स्वीकार नहीं किया। लोगों ने उनसे हठपूर्वक

पूछा कि क्या कारण है कि इतने पवित्र घी दूध के भोजन को आपने त्याग दिया और ... की रोटियों को स्वीकार कर लिया। गुरुदेव ने जवाब दिया कि इन रोटियों में दूध है ... घृत पक्व भोजन में खून है, तमोगुण है। इसलिए ऐसे तमोगुण प्रधान भोजन मुझे रुचि... थे। यह कहकर उन्होंने पूड़ी उठाकर निचोड़ी और सूखी रोटी उठाकर निचोड़ी। रोटि... दूध व पूड़ियों से खून गिरने लगा। लोगों ने इस चमत्कार को देखकर बड़ा आश्चर्य मान... इसलिए मनुष्य को चाहिए भोजन सात्विक करें। वह नेक कमाई का हो तो सोने पर सुहागा होगा। इसके अतिरिक्त भगवान ने गीता में आज्ञा दी है :–

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अर्थात् जिनका आहार विहार युक्त है। जिनका सोना व उठना युक्त है और जिसकी हर चेष्टा नियमित होती है उनके लिए योग दुःखों का नाश करने वाला है। इसलिए सात्विकी आहार के साथ–साथ युक्ताहार विहार के नियम का पालन करना भी बहुत आवश्यक है। मनु... को भोजन खूब चबाकर करना चाहिए। दूध को थोड़ा–थोड़ा करके पीना चाहिए, इससे ... को यह अनुभव होता रहे कि चबाया हुआ पदार्थ पेट में पहुँचते ही हजम हो चुका है। ... भोजन करे, आधा जल से और चतुर्थ भाग वायु के लिए खाली रहने दे। इस प्रकार क... हर व्यक्ति के लिए पूर्ण लाभप्रद है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि एक ... शीर्षासन आदि करता है और वह अपने आहार को इतना संयमित कर दे कि सहन श... बाहर हो, उसका परिणाम भी अवश्यक खराब निकलता है। ऐसे व्यक्ति को भूखा नह... चाहिए न ही उपवास करना चाहिए। उपरोक्त नियम उन परमार्थ जिज्ञासुओं के लिए है जो ... समय स्वाध्यायशील हैं और समाहित चित्त हैं। नैत्यिक व्यायाम करने वाले नौजवानों के लिए उपयुक्त आहार लेना व भूख को न मारना आवश्यक है।

❋ ❋ ❋

आप जितना कुछ देंगे उसका हजार गुना होकर वह आपके पास लौट आयेगा। इसके लिये धीरज रखना आवश्यक है। हमारा जन्म देने के लिये है लेने के लिये नहीं। जो कुछ भी प्राप्त हो उसे उदारता पूर्वक खुशी-खुशी बाँटते चलो। सुखी जीवन का यही एक राजमार्ग है।

पूर्णयोगी कौन ?

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।

हे अर्जुन ! वह पूर्णयोगी है जो अपनी तुलना से समस्त प्राणियों की उनके सुखों तथा दुःखों में वास्तविक समानता का दर्शन करता है।

कृष्णभावनाभावित व्यक्ति पूर्ण योगी होता है। वह अपने व्यक्तिगत अनुभव से प्रत्येक प्राणी के सुख तथा दुःख से अवगत होता है। जीव के दुःख का कारण ईश्वर से अपने सम्बन्ध का विस्मरण होना है। सुख का कारण कृष्ण को मनुष्यों के समस्त कार्यों परम हितैषी मित्र समझना है। बद्धजीव कृष्ण से अपने सम्बन्ध को भूल जाने के कारण तीन प्रकार के भौतिक तापों (दुःखों) को सहता है; और चूँकि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति सुखी होता है इसलिए वह कृष्णज्ञान को सर्वत्र वितरित्त कर देना चाहता है। चूँकि पूर्णयोगी कृष्णभावनाभावित बनने के महत्त्व को घोषित करता चलता है, अतः वह विश्व का सर्वश्रेष्ठ उपकारी एवं भगवान् का प्रियतम सेवक है। **न च तस्मान मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः** (भगवद्गीता १८.६९)। दूसरे शब्दों में, भगवद्भक्त सदैव जीवों के कल्याण को देखता है और इस तरह वह प्रत्येक प्राणी का सखा होता है। वह सर्वश्रेष्ठ योगी है क्योंकि वह स्वान्तःसुखाय सिद्धि नहीं चाहता, अपितु अन्यों के लिए भी चाहता है। वह अपने मित्र जीवों से द्वेष नहीं करता। यही है वह अन्तर जो एक भगवद्भक्त तथा आत्मोन्नति में ही रुचि रखने वाले योगी में होता है। जो योगी पूर्णरूप से ध्यान धरने के लिए एकान्त स्थान में चला जाता है वह उस भक्त के तुल्य नहीं होता जो प्रत्येक व्यक्ति को कृष्णभावनाभावित करने का प्रयास करता रहता है।

...ग. 008 नवम्बर ...03

PRINTED MATTER BOOK-POST

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

श्री/सुश्री

567 मालिक चंद शर्मा
बी 65, बालाजी पुरम, अलबतिया रोड,
ताजगंज, आगरा

कविं पुराणम् अनुशासितारम् अणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ८/९)

मनुष्य को चाहिये कि परमपुरुष का ध्यान सर्वज्ञ, पुरातन, नियन्ता, लघुतम से भी लघुतम, प्रत्येक का पालनकर्ता, समस्त भौतिकबुद्धि से परे, अचिन्त्य तथा नित्य पुरुष के रूप में करें। वे सूर्य की भाँति तेजवान हैं और इस भौतिक प्रकृति से परे, दिव्य रूप हैं।

प्रकाशक एवं मुद्रक :- विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बल्देईफर्मी, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक आचार्य ब्र.(डॉ.) दाससाल शर्मा